ज्योतिष तथा जीवन के अनबूझे रहस्य
ज्योतिर्वेद
के विभिन्न सोपान, भाग 3
VENUS
MARS
URANUS
PLUTO
स्वामी सनातन श्री

ज्योतिष तथा जीवन के अनबूझे रहस्य

ज्योतिर्वेद

के विभिन्न सोपान . भाग ३

श्रद्धेय स्वामी सनातन श्री जी के श्रीमुख से
श्री सनातन आश्रम
गौराबाग, कुर्सी रोड, लखनऊ

प्रस्तुति : राजेश्वरी शंकर
संपादिका : 'द टाइम्स ऑफ एस्ट्रोलॉजी

NISHKAAM PEETH PRAKASHAN
(Publication Divison of "The Times of Astrology")

First Edition : 2002

ISBN 81-87528-33-8

Also available at :
Lucknow Beureau of **"The Times of Astrology"**
B-4, Arif Vikas Chamber, Sector-2, Vikas Nagar, Lucknow
Phone : 0522 - 769462

Cover Design : Anindya Shanker

Published by **Rajeshwari Shanker** on behalf of ***Rajeshwari Shanker Assoicates*** for **Nishkaam Peeth Prakashan** (Publication Divison of **"The Times of Astrology"**) Rajeshwari Shanker Associates,
1009, Indra Prakash Building, 21 Barakhamba Road, New Delhi - 110 001
Ph : 011-3717738, 3717743,
E-mail: *daya54@indiatimes.com;*
editor@jyotirved.com; editor@timesastrolgy.com
http//:www.timesastrolgy.com
http//:www.jyotirved.com

Printed by : Triveni Offset, M/146, Ram Gali no.7, Panchsheel Garden, Naveen Shahdara, Delhi - 110 032, Phone : 2288175

(श्रद्धेय स्वामी सनातनश्री जी)

श्री सनातन आश्रम
गौराबाग, कुर्सी रोड,लखनऊ — 226007
फोन : 0522—362686, 0522—361796
Email- *ssshree@sify.com*

अनुक्रम

प्रास्ताविक

"संन्यासी के श्रीमुख से निस्सृत प्रत्येक शब्द स्वतः प्रमाण होता है", इसमें कोई सन्देह नहीं रहेगा, पाठकों को।

वस्तुतः सनातन परंपरा से हमारा विचलन निहित स्वार्थों की मात्र तात्कालिक उपलब्धि है। ऐसे दौर में जरूरत थी हमें सच्चे संन्यासियों के आशीषों की, जो सनातन परम्परा के ऊपर पड़ी राख की परतों को अपनी प्राण ऊर्जा से विस्फारित कर समूचे संसार को उत्प्रेरित करते ताकि **'सनातन दर्शन'** और उसकी परम्परा, जनजीवन का फिर से एक अनिवार्य अंग बनते। खेद है कि संन्यास के मर्म को समझे बिना, अनेकों व्यवहार बुद्धि में किंचित अधिक कुशल व्यक्तियों ने, संन्यास के बाह्याडम्बर को तो अपना लिया किन्तु अपने अन्दर संन्यास वृत्ति को नहीं जगा पाए और संन्यास के वस्त्रों में सजे संवरे इन स्वयभूं व्यक्तियों के प्रति उमड़े जन मानस के प्यार और सम्मान पर, जो इन्हें सहज रूप में एक बार मिलना शुरू हुआ, तो कहीं बाद में यह छूट न जाए, इस व्यामोह और व्यापार बुद्धि के चलते, वे सचमुच अपने ढोंग और आडम्बर का एक विशाल साम्राज्य खड़ा करने को मजबूर हुए। ऐसा करके, न सिर्फ इन तथाकथित संन्यासियों/संतों ने अपना अहित किया बल्कि सच्चे संतों और संन्यासियों को पृष्ठभूमि में ढकेल कर जनमानस, सचराचर और

सनातन दर्शन के असली रूप के साथ घोर अन्याय कर स्वयं घृणित अपराधी बने।

*ऐसे माहौल में, "**श्रद्धेय स्वामी सनातन श्री**" जी की इस भरत खण्ड भारत में प्राणवान उपस्थिति, बीसवीं और इक्कीसवीं शताब्दी का एक बहुत बड़ा गौरव है, सनातन संस्कृति, दर्शन, अध्यात्म और जीवन का एक ऐतिहासिक अध्याय है, जहाँ संन्यासी, समाधि और समाधान के प्रत्यय सदैव के लिए अक्षुण्ण हो गए हैं।*

मुझे बताया गया था कि लखनऊ में कुर्सी रोड पर **'श्री सनातन आश्रम'** है और वहाँ एक विलक्षण संन्यासी स्वामी सनातन श्री हैं। यह आश्रम अद्‌भुत है, जहाँ पशु, पक्षी यथा कुत्ते, बिल्लियों की योनि में अवतरित जीवात्माएँ "भजो राम! राम! राम! भजो। गोविन्द! राधेश्याम।" के भजन गाते हैं। सामान्यतः यह विचित्रता आश्चर्य पैदा करती है, ऐसा चमत्कार तुरन्त देखने जाने की ललक पैदा करती है, हर मनुष्य के मन में। पर मुझे लगा, यह भी लोगों को आकर्षित करने का ढोंग भर हो सकता है किसी आश्रम का, उस देश में, वर्तमान में जिसमें संन्यासी/संत, अध्यात्म को छोड़ अपने चमत्कारी बाजीगरी करतबों से अपने–अपने प्रतिष्ठान बनाए बैठे हैं।

पुनः एक मित्र ने श्रद्धेय स्वामी जी के बारे में एक प्रसंग सुनाया :

> *"एक व्यक्ति बदहवास सा आकर आश्रम में स्वामी सनातन श्री जी के चरण कमलों में आ गिरा। बोला, 'स्वामी जी! मुझे बचाइए। मैं तीन दिन और तीन रात से सो नहीं सका हूँ। भय और आतंक से पूरा जीवन भर गया है। मुझे बचाइये।"*
>
> *"बात क्या है, भगवन?" 'गोविन्द हरि! हरि गोविन्द' कहते हुए स्वामी जी ने पूछा।*
>
> *'मेरे पड़ोसी ने मुझे जमकर गालियाँ दी हैं, खूब पीटा है, देखिए, मैं तीन दिन से अपना टूटा हुआ हाथ लिए घूम रहा हूँ। प्लास्टर कराने तक बाहर नहीं निकला हूँ। अगर उसने देख लिया और बाहर पा लिया, तो फिर और मारे बिना नहीं छोड़ेगा, ऐसा मुझे लगता है। मुझे बचा लीजिए स्वामीजी" वह व्यक्ति बारबार गिड़गिड़ाए जा रहा था।*
>
> ***'गोविन्द हरि! बन्धु! तुम्हारा कष्ट दूर होगा कैसे? भजना चाहिए था तुम्हें गोविन्द को, जो सबका कष्ट दूर करते हैं, और भज रहे हो तुम तीन दिन से अपने पड़ोसी को, जो कष्ट दे रहा***

है। जिसने कष्ट दिया है, उसे भजोगे, रातदिन उसी का ध्यान करोगे तो वह और कष्ट नहीं देगा, तो क्या करेगा? गोविन्द हरि! स्वामी जी ने सहज सरलता में उत्तर दिया।

उस व्यक्ति का कष्ट दूर हुआ या नहीं या कैसे दूर हुआ, यह जिज्ञासा मुझे नहीं हुई। बस जिज्ञासा हुई तो इतनी कि यह कोई जेनुइन सन्त है, जो खो नहीं गया है, इस आडम्बरपूर्ण आधुनिक युग में; तुरन्त दर्शन करना चाहिए।

उसके बाद का वृतान्त, नितान्त निजी है। सार्वजनिक है तो इतना कि ऐसी आत्मीयता, ऐसा स्नेह, ऐसा ज्ञान और ऐसी शांति कहीं और नहीं मिलती। मिलकर लगता है, वापस जड़ों को पा लिया हो पेड़ ने जैसे, अब उसे सूखने और मुर्झाने का कोई डर नहीं।

"सत्य वही है जो सरलतम तरीके से भासने लगे आपको, और जिसका सत्यापन आपका अन्तर्मन अविलम्ब कर दे, अन्यथा, वह सत्य नहीं, सत्याभाष होगा, और कभी–कभी मात्र तात्कालिक सत्य होगा।" यह कसौटी भी, सच के अनुयायियों को श्रद्धेय स्वामी जी से ही प्राप्त होती है। सत्य, जो सार्वजनीन है, सार्वकालिक है, न काल की अपेक्षा रखता है न देश की, सार्वत्रिक रूप से सत्य है, सदा–सदा, वह ही ऋत है, जिसका प्रकटन ऋग्वेद में हुआ।

जितना कुछ वेद को मैंने जाना है, श्रद्धेय स्वामी जी से ही सीखा है, जाना है और प्रयासरत हूँ।

वस्तुतः तो वेद, अनेकों विद्वानों के विद्वतापूर्ण भाष्यों के ढेर में खो गए हैं जैसे कि बहुमूल्य हीरे की अँगूठी, कूड़े के किसी विशालकाय ढेर में खो जाए।

आज से लगभग 42 वर्ष पूर्व लखनऊ में नवरात्र के अवसर पर प्रकट किए गए वेद के रहस्य जो स्वामी जी के श्रीमुख से निस्सृत हुए, वे निरन्तरता में सम्पूर्ण वेदों, सनातन दर्शन की वास्तविक कुंजिकाएं हैं, जिनका पारायण यथाक्रम से नवरात्र में विशेषतः और सदैव ही, सामान्यतः जो भी करेंगे, मनन करेंगे, वे वेदों के रहस्यों को जानने की क्षमता प्राप्त करने की दिशा में सक्रिय कदम उठाएंगे, इसमें सन्देह नहीं।

महामुनि याज्ञवल्क्य, वाल्मीकि तथा नाना ऋषियों द्वारा पूर्व में मुखरित श्री राम कथा के अनन्य रहस्य, जब श्रद्धेय स्वामी जी के श्रीमुख से अनावृत होते हैं, तब तुरन्त लगने लग पड़ता है कि सभी पूज्यनीय ऋषिगण, भगवान राम की कथा के बहाने से हमें हमारी ही गाथा सुना रहे हैं, हमें हमारी उत्पत्ति और जीवन संपादन का स्वरूप दिखला रहे हैं, हमें सरलतम तरीके से वेद पढ़ा रहे है जिनके बारे में कालान्तर में यह भ्रम फैला दिए गए कि वेद समाज के एक वर्ग विशेष के लिए

ही पठनीय हैं और समाज के एक दूसरे वर्ग विशेष के लिए तो इसका नाम तक लेना अपराध है। ऐसी ही भ्रान्त धारणाओं और मान्यताओं को बलिष्ठ करते जाने की चालाकियों से सम्पूर्ण विश्व का भरण पोषण करने वाले इस भरत खण्ड, **भारत** के अब विघटन तक की नौबत आ पहुँची है। ऐसे में जब आपको अपना स्वयं का शुद्ध शाश्वत परिचय इस ग्रन्थ में मिलता है तो मानो आपका पुनर्जन्म सा होता है, जिसे आपका 'द्विज' होना ही कहा जाएगा, "जन्मना जायते शूद्राः संस्कारात् द्विज उच्यते" की उक्ति आप पर चरितार्थ हो उठती है। जब तक आपको अपना स्वयं का सही परिचय नहीं मिलता, भला आप याज्ञवल्क्य, वाल्मीकि, वशिष्ठ, विश्वामित्र और नारद जैसे ऋषियों का परिचय क्या पाएंगे?

चाहे कथा राम की हो या कृष्ण की, दोनों का उद्देश्य एक ही है, वेदों के रहस्य को सरलतम तरीके से आपके पास पहुँचाना, आपको अपना जीवन दर्शन कराना और यह अहसास कराना कि इस सृष्टि के आप एक बहुमूल्य और जिम्मेदार अंग हैं, इस सृष्टि के संचालन, संवरण और संतुलन में आपकी एक अहम् भूमिका है। इसीलिए महाभारत आपके अन्दर चलता है तो राम–रावण युद्ध भी आपके ही अन्दर चलता है। राम कथा में जहाँ दसों इन्द्रियों को (रथ कर) निग्रह कर व्यक्ति दशरथ हो जाता है और (आत्मा) राम उसके (हृदय) आँगन में बसे हुए प्राप्त होते हैं वहीं यदि वह व्यक्ति दसों इन्द्रियों को दस मुँह (आनन) बनाकर सम्पूर्ण प्रकृति/सृष्टि का दोहन करने लगता है, अपना आहार बना लेता है तथाकथित सुखोपभोग में लिप्त हो जाता है तो वह दशानन (रावण) हो जाता है। कृष्ण कथा में (आत्मा) कृष्ण, जीव (जीव बुद्धि) अर्जुन के सारथी बनकर मायाओं के महासमर महाभारत युद्ध को जीतने का जो मार्ग प्रशस्त करते हैं, यह सब वेद, जो आपको अपने असली स्वरूप को प्राप्त करने का ज्ञान प्रमुखतः है, का ही सरलतम रूप से दिग्दर्शन है जो श्रद्धेय स्वामीजी की अमर वाणी उनके साहित्य के रूप में अक्षुण्ण रखे हुए है।

मन ही दशरथ और मन ही दशानन है, बिल्कुल एक दूसरे के विपरीत। जहाँ इन्द्रियाँ अर्न्तमुखी हुईं, दशरथ बना, राम को पाया। जहाँ इन्द्रियाँ वाह्योर्मुखी हुईं, सब सुख बाहर खोजा, लूटा खसोटा सचराचर को, अपने को ही केन्द्र में रखा, सबको अपना अनुचर बनाने की प्रकृति जगी तो मन दशानन हो गया।

मन क्यों दशानन होना चाहता है? क्योंकि उसके पास सोने की लंका है? उसके पास अकूत धन सम्पदा है? अपार बहुमूल्य और सैन्य बल है? भोगने के लिए राक्षसियों से लेकर अप्सरायें तक है? .....बहुत बड़ा अपराजेय राजा है? संभवतः यह सब पाने की लालसा हमें दशानन बनने को प्रवृत्त करती हो। लेकिन हम एक बात भूलते हैं जो श्रद्धेय स्वामी जी बार बार हमें याद दिलाते हैं। "यदि रावण (दशानन) इतना! इतना!! कितना!!! बड़ा राजा है, योद्धा है तो दशरथ क्या

भिखारी है? वह भी तो चक्रवर्ती सम्राट है, क्या नहीं है उनके पास? योद्धा ऐसे कि देवता भी उनकी मदद माँगते हैं? फिर दशानन मार्ग पर मन को क्यों ले जाना? दशरथ मार्ग पर आओ।''

दशानन मार्ग से दशरथ मार्ग पर मन कैसे आए? जैसे आए, वही तो साधना का मार्ग है जो श्रद्धेय स्वामी जी के अन्य अमर ग्रंथ 'साधना विज्ञान' में अपनी सम्पूर्णता में प्रकट हुआ है। जीवन के इन अनबूझे रहस्यों का उद्‌घाटन जहाँ श्रद्धेय स्वामी जी की अमर वाणी में होता हैं वहीं उनके प्रमाण हमें सचराचर में दिखाने का परिदृश्य भी स्वामी जी हमारे सामने उपस्थित करते रहते हैं। जो कुछ सचराचर में सहज उपलब्ध नहीं हो प्रमाण के लिए, उसे जीवन में भी हम सामान्यतया प्रमाणिक, आदि और अनन्त समय तक चलने वाला, नित्य सनातन अवयव कैसे मान लेंगे? यह सचराचर की पारदर्शिता तथा जीवन की उत्पत्ति, उसके संरक्षण और संवर्धन के महाविज्ञान स्वरूप ज्योतिष का भावरूप **'ज्योतिर्वेद के विभिन्न सोपानों'** में श्रद्धेय स्वामी जी के अलावा कोई और इस युग में प्रस्तुत कर सकता हैं, इसका गुमान भी मुझे नहीं है। अपितु यह संभवतः इस युग में एक स्वर्णिम अवसर है, सनातन दर्शन, वेद और अध्यात्म की सही राह पर चलने का, और यह आशीर्वाद स्वरूप श्रद्धेय स्वामी जी ने ही अवसर दिया है मुझे, कि मैं निमित्त बनूँ ,**'ज्योर्तिवेद के विभिन्न सोपान'** आप तक तीन श्रृंखलाओं में पहुँचाने के लिए ताकि आप सब स्वयं इस अमर ग्रंथ के विभिन्न भागों के एक साथ अथवा अलग-अलग पारायण के साथ ही जीवन और ज्योतिष के अनबूझे रहस्यों तक पहुँच सकें, उसके वास्तविक स्वरूप को जान सकें, अपने आपको पहचान सकें और हो सके तो अपने असली स्वरूपं को पा सकें। प्रस्तुत ग्रंथ इसी अमर श्रृंखला का तृतीय भाग है जो पहले तथा दूसरे भाग से स्वतंत्र भी हैं और उनका संम्पूरक भी।

आप सब पाठकों को ईश्वरत्व प्राप्त हो, श्रद्धेय स्वामी जी का अनुग्रह और आशीर्वाद हो, दशरथ मार्ग हो आपका और उच्चतम ज्योतिर्मय जीवन हो आप सबका।

राजेश्वरी शंकर
संपादिका
('द टाइम्स ऑफ एस्ट्रोलॉजी)
ज्योतिर्वेद की द्विभाषी मासिक पत्रिका
1009, इन्द्रप्रकाश बिल्डिंग, 21 बाराखम्बा रोड,
नयी दिल्ली – 110 001
फोन : 011-3717738, 011-3717743, 0522-769462
Email:*editor@thetimesofastrology.com*

• ज्योतिर्वेद के विभिन्न सोपान

तृतीय-खण्ड

जीवन के उद्‌गम, विकास एवं उत्पत्ति के रहस्यों की खोज में हम पुनः उसी समय के गुरूकुल में प्रवेश करने के लिये आतुर हैं। जहां हमने यज्ञोपवीत, यज्ञ तथा ऋग्वेद के प्रथम ऋषि मधुच्छन्दा के द्वारा प्रतिपादित ज्ञान को संक्षेप में जाना है। अनन्त काल से इन रहस्यों को खोजने के सन्त मनीषी जनों के सदप्रयास एवं आधुनिक काल के प्रतिष्ठित एवं सम्मानित वैज्ञानिकों के सदप्रयासों के साथ ही हम खोज की विभिन्न धाराओं का निष्पक्ष आंकलन एवं साक्ष्य प्रमाणों सहित शोध करते हुए अनन्त की यात्रा पर हैं। हमने निश्चय किया है कि हमारी शोध यथा काल, यथा परिस्थितियां, यथा समय पर, उसी वातावरण एवं मानसिकता में स्वयं को ढाल कर खोज करेंगे। हम समय के अन्तरालों को साकार करने के बाद ही खोज को दिशा प्रदान करेंगे।

पूर्व के दो खण्डों में जीवन के उद्‌गम अथवा उत्पत्ति की दो विपरीत अवधारणाओं पर खोज को केन्द्रित करने का निर्णय लिया है। आधुनिक चार्ल्स डारविन की अवधारणा जिसमें जीवन का उद्‌गम पृथ्वी पर ही एमीबा और बैक्टीरिया से उत्पन्न होना दर्शाया गया है। इसके साथ ही ग्रहों आदि की उत्पत्ति की अवधारणा में " बिग–बैंग–थ्योरी " की एक अदभुत कल्पना को हमने शोध के हित में चुना है।

इसके विपरीत वेद की अवधारणा को हमने खोज के लिये चुना है। इस अति प्राचीन अवधारणा को प्रथम हमें खोजना है। इसके सही स्वरूप को शोध कर स्पष्ट करना है। पुनः इस पर गम्भीर शोध द्वारा जीवन के रहस्यों को तर्क, प्रमाण एवं साक्ष्यों तथा नाना विज्ञान के

स्तरों पर स्पष्ट करना है। दोनो अवधारणायें एक दम विपरीत दिशाओं की ओर संकेत दे रही हैं।

वेद की मान्यता के अनुसार, जीवन पृथ्वी पर आकाश गंगाओं से उतारा गया था। जीवन का मूल उद्गम क्षीरसागर है, जो मायारहित क्षेत्र है। क्षीर सागर स्पेस में ही ग्रहों नक्षत्रों की उत्पत्ति होती है। दुर्घटनाओं से ग्रह नहीं बनते हैं। प्रकृति के निर्धारित अटल नियमों पर ही ग्रहों नक्षत्रों एवं आकाशगंगाओं की उत्पत्ति, उसी प्रकार होती है, जैसे शिशु का माता के गर्भ से जन्म होता है।

इसके साथ ही हमें सूक्ष्म रूप से इस विज्ञान के साथ जुड़ी मान्यताओं, विश्वासों को भी खंगालना होगा। उदाहरण के तौर पर आधुनिक विज्ञान का मत है कि सूर्य से हमें गर्मी प्राप्त होती है। जबकि वैदिक मत है कि सूर्य से गर्मी पृथ्वी तक आ ही नहीं सकती। गर्मी क्षीरसागर **स्पेस** पार कर ही नहीं सकती। दोनो के पास सशक्त तर्क, प्रमाण, सिद्धान्त एवं वैज्ञानिक कारण हैं। हमें दोनो के विचारों को निष्पक्ष रूप से मन्थन करना होगा। निर्णय आसान नहीं होंगे।

वेद के आदि प्राचीन तथा लुप्तप्राय होने के साथ ही समय के साथ ही बदल दी गयी अथवा विभ्रमित कर दी गयी मान्यताओं, धारणाओं को भी मूल विचार से अलग करना होगा। हमारे शोध को एक साथ कई दिशाओं में सामंजस्य सहित कार्य करना होगा। हम धीरे धीरे परन्तु निश्चित गति से अपने शोध में बढ़ते रहेंगे। हम सावधानी पूर्वक, सधे कदमों से अपने शोध में आगे बढ़ेंगे। प्रथम खण्ड हमारे शोध की भूमिका है। द्वितीय खण्ड में हमने गुरूकुल में यज्ञ, यज्ञोपवीत तथा ऋग्वेद के प्रथम ऋषि मधुच्छन्दा को अपनी शोध के सीमित दायरे में ही जाना है। इस खण्ड में हम ज्योतिर्वेद के विषय में गुरूकुल में शोध की सीमा के भीतर परिचित होने के प्रयास करेंगे।

ज्योतिर्वेद तथा ज्योतिष शास्त्र में समय के साथ बहुत कुछ बनता बिगड़ता तथा घटता बढ़ता रहा है। बहुत कुछ ऐसा भी है जिसे समय ने अनावश्यक समझकर भुला दिया अथवा महत्व ही नहीं दिया। हमें सूक्ष्मता से सबसे पहले इस विज्ञान को इसके मौलिक रूप में लाना होगा। उसे भली प्रकार से समझना होगा। उसके उपरान्त ही हम अपने शोध कार्य पर आगे बढ़ सकते हैं।

आदि काल से, नियमपूर्वक प्रत्येक पंचांग के आरम्भ में क़ाल की गणना नियम पूर्वक की जाती है। इसे कोई भी महत्व नहीं दिया जाता है। सर्वप्रथम हमें इसे जानना परमावश्यक है। :–

'' चतुर्युगसहस्त्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते, तेषु चतुर्दश मनवो भवन्ति। तन्नामानि १. स्वायम्भुवः, २. स्वारोचिषः, ३. औत्तमः, ४. तामसः, ५. रैवतः, ६. चाक्षुषः ७. वैवस्वतः (वर्तमान), ८. सावर्णिः, ६. दक्षसावर्णिः, १०. ब्रह्मसावर्णिः, ११. धर्मसावर्णिः, १२. रूद्रसावर्णिः, १३. देवसावर्णिः, १४. इन्द्रसावर्णिः। तत्रैकैकस्य मनोरेकसप्ततिमहायुगानि भवन्ति। ''

महायुगप्रमाणं :– ''विंशतिसहस्त्राधिक त्रिचत्वारिंशल्लक्षमिताब्दाः, एवं चाक्षुषपर्यन्त षण्मनवो गताः, वर्तमान वैवस्वतमनुः सप्तमः। तत्र सप्तविंशतिमहायुगानि गतानि। वर्तमानमष्टाविंशतितमं महा युगम्। ''

चार युग एक हजार बार निकल जाने पर ब्रह्मा जी का एक दिन होता है, इन्हीं दिनो के मान से ब्रह्मा जी की आयु १०० वर्ष होती है। इस समय ब्रह्मा जी की आयु के ५० वर्ष व्यतीत होकर ५१ वें वर्ष के प्रथम दिन का उदय होकर १३ घटी, ४२ पल, ३ विपल, ४३ प्रति विपल व्यतीत हो चुके हैं। ब्रह्मा जी के एक दिन में उपर्युक्त १४ मनु होते हैं

और एक मनु में ७१ महायुग होते हैं। एक महायुग के सौर मानुष ४३ लक्ष, २० हजार वर्ष हैं। इस प्रकार चाक्षुष पर्यन्त ६ मनु निकल चुके हैं और सातवां मनु वैवस्वत मन्वन्तर चालू है। इस मनु के २७ महायुग निकलकर २८ वां महायुग चल रहा है। चारों युगों के नाम एवं काल के प्रमाण इस प्रकार हैं :–

१. सत्ययुग. १७,२८,००० वर्ष
२. त्रेतायुग. १२,९६,००० वर्ष
३. द्वापर " ८,६४,००० वर्ष
४. कलि " ४,३२,००० वर्ष
कुल संख्या ४३,२०,००० वर्ष

गणना का यह क्रम आदिकाल से निरन्तर चल रहा है। ऐसा क्यों ? आश्चर्य है कि सभी पत्रों में आदि प्राचीन काल से चली आ रही इस गणना पर किसी में कोई मतभेद भी नहीं हुआ। किसी ने इसके क्रम पर टिप्पणी भी नहीं की तथा इसपर एक विस्तृत शोध की भी जरूरत नहीं समझी गयी।

ज्योतिष के नये नये अनुसन्धान, नये सिद्धान्त भी बनते रहे। ग्रहों के चलन को लेकर मतभेद भी होते ही रहते हैं। परन्तु इस ओर किसी का ध्यान भी नहीं जाता ? क्या सचमुच यह सृष्टि की गणना है ? क्यों आदिकाल से, प्रत्येक पत्रा प्रति वर्ष, इसके समय में यथा काल के अन्तर को यथा गणना क्रम से शुद्ध करता इसे सम्मानित करता है ?

इतना ही नहीं, युगों के आरम्भ काल के समय को भी नियमित रूप से दर्शाने की प्रथा सदैव रही है। **सत्ययुग** का आरम्भ कार्तिक शुक्ल नवमी, दिन बुधवार, प्रथम प्रहर, श्रवण नक्षत्र, वृद्धि योग में हुआ था। इसे सदा याद करने के लिये पत्रों में क्यों दर्शाया जाता है ?

त्रेता युग का आरम्भ वैशाख शुक्ल, तृतीया, दिन चन्द्रवार, द्वितीय प्रहर, रोहिणी नक्षत्र, शोभन योग में हुआ ? इसी प्रकार **द्वापर युग** माघ कृष्ण ३०, तृतीय प्रहर, दिन शुक्रवार, धनिष्ठा नक्षत्र, वरियान योग में हुआ ? **कलियुग** का प्रारम्भ भाद्रपद कृष्ण १३, दिन रविवार, अर्ध रात्रि, आश्लेषा नक्षत्र, व्यतिपात योग में हुआ, बताया गया है ?

क्या यह सब सत्य ह अथवा कपोल कल्पित ? हमें खोजना होगा। सबसे पहले हमें इसको विस्तार से समझना होगा।

इसके अतिरिक्त मत मतान्तर जिन्हें मनघड़न्त कहकर ठुकरा दिया गया है, हमें शोध द्वारा सिद्ध करना होगा कि वे सचमुच सही हैं अथवा गलत। उनके प्रभाव में आने के कारण आदि भी स्पष्ट करने होंगे। समय के साथ बहुत कुछ बदल भी जाता है। जैसे क्रिश्चियन स्कूल और चर्च की मान्यता रही है कि पृथ्वी की परिक्रमा सूर्य करता है। दासता के लम्बे अन्तरालों में गुरूकुल शिक्षा के ध्वस्त हो जाने के कारण भारत के आम नागरिक भी इसे ही सत्य मान बैठे। जबकि गुरूकुल शिक्षा ने काल निरूपण प्रणाली बनायी थी उसका मात्र आधार है कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। परिक्रमा ही संवतसर का आधार है जिसे अब हम वर्ष के रूप में जानते हैं। आज भी एक परिक्रमा ही एक वर्ष का प्रमाण है।

ब्रह्माण्ड को लेकर भी बहुत सी कल्पनायें जन्मती रहीं तथा समय के साथ उनमें बदलाव आते रहे। गैलेलियो के मतानुसार ब्रह्माण्ड सदा फैलता रहता है। ब्रह्माण्ड एक शून्य से प्रारम्भ हुआ। एक भारी विस्फोट के साथ ही एक ही प्रकार की ज्योति से ग्रह नक्षत्र तथा पदार्थों की सृष्टि हुई। यह उनका कई बार का संशोधित किया हुआ विचार है। जिसे समय समय पर अनुसंधानकर्ता शोधित करते रहें हैं।

जैसे जैसे यह विचार स्पष्ट हो रहा है, मनघड़न्त कहे जाने वाले अति प्राचीन विचार के समीप होता जा रहा है। **एकोब्रह्मद्वितीयोनास्ति** जैसे वाद के समान होने लगा है। **अल्लाह एक है**, तथा **एक नूर से सब जग उपजया,** आदि अति प्राचीन वादों जैसा ही, परन्तु कुछ कम स्पष्ट लगने लगा है। इसलिये हमें किसी भी वाद को पूरी तरह स्पष्ट किये बिना तिरस्कृत नहीं करना है।

परमाणुओं की संरचना भी धीरे धीरे पुराने तिरस्कृत विचारों का लगभग अनुमोदन करने लगी है। धर्म और विज्ञान परस्पर एक ही धारा से बहने लगे हैं। युनानी स्कूल और विचारधारा का फिर से विज्ञान में समावेश होने लगा है। यहूदी स्कूल और विचारधारा पर भी विज्ञान नये शोध को आधार बना रहा है। दुर्भाग्य से दासता के उपरान्त भी भारत का खगोल विज्ञान अपने अतीत को झांकने में असमर्थ है। कारण स्पष्ट है। आजादी के उपरान्त भी शिक्षा का स्वरूप विदेशी दासता से कुछ बद्तर ही हुआ। उसका भारतीयकरण हो ही नहीं पाया। जब भारतीय खगोल वैज्ञानिक अपने अतीत को कभी पढ़े ही नहीं तो उसमें शोध जैसी कल्पना कैसे जन्म ले पाती। इन महान ग्रन्थों को सैक्युलरिज़्म के नाम पर अछूत बनाया गया है। काश ! भारत के खगोलशास्त्री भारत के अतीत के समीप हो पाते !

पूर्व के दो खण्डों में अतीत की कथा को उपलब्ध साक्ष्यों और प्रमाणों के द्वारा पुनर्जीवित एवं स्पष्ट करने का प्रयास भर ही है। सर्वसाधारण भी इस कथा यात्रा में हमारे साथ सुखपूर्वक अपने अतीत की यात्रा सहज ही कर सके, इसीलिये इसे शोध पत्रों के स्थान पर शोध उपन्यासों का स्वरूप देने का प्रयास किया है। साक्ष्यों और प्रमाणों की भीड़ लगाकर इसे बोझिल नहीं किया है। वेद के भाष्य एवं व्याख्या अमरकोश, निरुक्त तथा संस्कृत के मान्य शब्दकोश सम्मत है। इसके शब्दार्थ किसी भी संस्कृत कौस्तुभ में सहज ही देखे जा सकते हैं।

इसके साथ ही जो कुछ भी कहा गया है, श्रुति सम्मत होने के साथ ही आदि प्राचीन सभी धर्मग्रन्थों की मान्यता तथा मूल आदि भावना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। आदि सनातन धर्म और वेदों को सरल परन्तु सरस एवं सही मान्यताओं के साथ स्पष्ट करने के प्रयास हैं।

इसी की वर्तमान कड़ी में हम ज्योतिर्वेद के रहस्यों को स्पष्ट करने के लिये पुनः गुरूकुल में प्रवेश करने जा रहे हैं। सर्वप्रथम हमें ज्योतिर्वेद की मान्यताओं को समझना होगा। उन्हें सामने रखकर ही हम इन महान ग्रन्थों के विज्ञान को स्पष्ट कर पावेंगे। वेद ने जीवन के समीकरण को, मानव् अथवा जीवन्त योंनियों के स्तर पर तीन भागों में बांटा है।

१. जीवन्त शरीर, यह जीव के रहने का घर अथवा मकान है।
२. जीव, जो इसमें रहता है। सुख दुख, लाभ हानि, जय पराजय, अनुभूति, सोच, समझ, कल्पना, विचार आदि को भोगता है।
३. तीसरे स्तर पर एक अमर शक्ति है जिसे आत्मा कहा गया है। आत्मा ही शरीर का निर्माता, रक्षक तथा जीव की ऊर्जा शक्ति है। तीनों का सम्मिश्रण ही जीवन है। जीव भोक्ता है, भोगी है।
जबकि आत्मा दाता है। अन्यथा दोनो में कोई भेद नहीं है। भोक्ता को दाता के साथ अद्वैत कर, दाता के स्वरूप में एक होकर, अनन्त की राह लेनी है। यह मानव योनि का परम लक्ष्य है।

सम्पूर्ण सचराचर एक ही नियम सिद्वान्त से बनता, बिगड़ता तथा पुर्न संरचना को प्राप्त होता है। एक ही सनातन नियम पर सृष्टि प्रलय एवं उत्पति की कल्पना है। **यत् पिन्डे तत् ब्रह्माण्डे !**

जीव और आत्मा का मिलन ही योग है। आत्मा घटघटवासी है। आत्मा परमात्मा का लीला अवतार है। जीव अर्थात हम सबको, आत्मा से अद्वैत कर अमर ज्ञान को प्राप्त होकर अनन्त की राह लेनी है।

मानव की भान्ति ही ग्रहों नक्षत्रों की उत्पति तथा प्रलय होती है ? हिरण्य गर्भ में, क्षीर सागर में, बिन्दुओं से ब्रह्माण्डों की सृष्टि होती है। परिक्रमा तथा गुरूत्वाकर्षण के द्वारा ही ग्रह, नक्षत्र तथा आकाश गंगायें जीवन का स्थायित्व पाती हैं।
पुच्छल तारे अथवा धूम्रकेतु गुरूत्वाकर्षण से टूट कर मृत्योन्मुखी होते अस्तित्व खोते ग्रहादि हैं। धूम्र मार्ग है। इसे ही पितृयान कहा गया है। कृष्ण छिद्र अथवा **ब्लैकहोल** वस्तुतः गर्भनाल हैं। इनसे होकर जाने वाले प्रकाश के बिन्दु, सूक्ष्म पदार्थ, हिरण्य गर्भ में प्रवेश करते नये ग्रहों को जन्मते हैं ? इसे ही विष्णु के नाभि कमल पर ब्रह्मा को बिठाकर दर्शाया गया है।

पदार्थ की संरचना क्षीर सागर में ही होती है। उल्कापात द्वारा उसका धरा पर पात होता है। प्रत्येक पदार्थ में अणु अथवा परमाणु (ब्रह्म बिन्दु) आपस में जुड़ते नहीं हैं। उनके बीच में क्षीरसागर सदा विद्यमान रहता है। जो इनके क्षीर सागर में बनने का सशक्त प्रमाण है ?

जीव एवं शरीर की स्वाभाविक उत्पति भी क्षीर सागर में ही होती है। इसीलिये बालक को माता के गर्भ अथवा मायारहित क्षेत्र की आवश्यक मर्यादा का निर्वाह करना पड़ता है। यही नियम वनस्पतियों पर भी लागू होता है ?

जीव को शरीर रूपी घर की आवश्यकता मायाओं के प्रभाव से बचने के लिये ही होती है। मायारहित क्षेत्र अथवा क्षीरसागर में उसे इसकी जरूरत नहीं पड़ती ?

मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है। एक शरीर रूपी घर के खंडित हो जाने की अवस्था है। जीव को ऐसी अवस्था में क्षीरसागर लौटना पड़ सकता है अथवा पृथ्वी पर उसे शीघ्र दूसरे घर में प्रवेश लेना होगा। यह घर अथवा शरीर, किसी भी योनि में हो सकता है ?

वेद की आस्था पुनर्जन्म में है। इस्लाम तथा क्रिश्चियन स्कूल क्रमशः तीन सूरा तथा तीन ट्रम्पेट में विश्वास करते हैं। उनकी आस्था पुनर्जन्म में नहीं है। नयी सृष्टि तक जीव को कब्र में प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

वेद ने धर्मग्रन्थ मूल पाठ के रूप में प्रकृति को ही धर्म ग्रन्थ की मान्यता प्रदान की है। परमात्मा का अवतार आत्मा ही इसका लेखक है। चारों वेद तथा अन्य धर्म ग्रन्थ इसी ग्रन्थ के भाष्य ग्रन्थ हैं। प्रकृति के सनातन नियम ही इस धर्म ग्रन्थ के मान्य नियम हैं।

तर्कशास्त्र को पूर्ण मान्यता तथा सम्मान प्रदान किया गया है। परिपक्व मानसिकता को पूर्ण सम्मानित किया गया है।

अब हम सब गुरूकुल में पुनः प्रवेश कर ज्योतिर्वेद की कक्षा में प्रवेश करने जा रहे हैं। हमें हमारे प्रश्नों के उत्तर वहीं समुचित रूप से प्राप्त होंगे। हमें धैर्य एवं संयम से प्रतीक्षा करनी होगी।

• गुरूकुल में प्रवेश

यज्ञ, यज्ञोपवीत, ऋषि मधुच्छन्दा एवं योग को संक्षेप में जान लेने के उपरान्त बालक ज्योतिर्वेद की कक्षा में प्रवेश पाते हैं। आचार्य उन्हें इस महान वेद से परिचित करा कर उनके जीवन को सार्थक करेंगे। देवालय का ज्ञान, नित्य सेवा सुबह एवं सायं, नित्य त्रिकाल संध्योपासना के विधान आदि कार्यक्रम उनके जीवन की व्यस्त दिनचर्या का अंग बन चुके हैं। आचार्य उन्हें ज्योतिर्वेद के उत्पति के अमृत ज्ञान से वरद करेंगे।

काल मिथ्या गति सत्यम ! समय एक कोरी कल्पना मात्र है। समय की स्वयं में कोई परिभाषा भी नहीं हो सकती। समय को गति के द्वारा ही अभिव्यक्त किया जाता है। समय को गति के द्वारा ही सीमित किया जा सकता है। समय अन्य ग्रहों एवं नक्षत्रों पर एक सा रहे, यह सम्भव नहीं है। परन्तु समय को गति के अनुपात द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को एक ही काल निरूपण व्यवस्था से स्पष्ट किया जा सकता है।

प्रत्येक ग्रह की स्वयं में समय की सीमित व्यवस्था हो सकती है, जो ग्रह को सर्वमान्य हो तथा ग्रह की सीमाओं तक ही सीमित हो। जैसे पृथ्वी पर सप्ताह की कल्पना अथवा दिन और रात्रि पर आधारित ६० घड़ी अथवा २४ घन्टे की समय की व्यवस्था। सप्त ग्रहों को प्रतीक मानकर सात दिन का सप्ताह पृथ्वी वासियों का सर्वमान्य गणना का सिद्धान्त, केवल पृथ्वी वासियों तक ही सीमित हो सकता है। अन्य ग्रहों पर रहने वाले व्यक्ति इससे न तो अपने ग्रह से धरा पर समय का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और ना ही पृथ्वी पर बीत रहे समय को ही

जान सकते हैं। सोम, मंगल, बुध, गुरू, शुक्र, शनि, रवि आदि क्रम भी सर्वमान्य होने से ही स्वीकार्य है। अन्यथा इस क्रम को बदला भी तो जा सकता है। सर्वमान्य होने से इसे यथा ग्रहण किया गया है।

इसी प्रकार ६० घड़ी अथवा २४ घन्टे का क्रम ग्रह की अपनी व्यवस्था है। पृथ्वी अपनी धुरि पर भ्रमण करती दिन और रात्रि की परिधि में निरन्तर घूमती रहती है। इसी अहोरात्र को समय में बांटा गया है। यदि पृथ्वी का धुरि भ्रमण धीमा पड़ जाये तो हमें भी अपनी घड़ियों को धीमा करना पड़ेगा। यदि पृथ्वी का धुरि भ्रमण तीव्र हो जाये तो हमें अपनी घड़ियों की गति बढ़ानी पड़ सकती है। यह भी ग्रह की आन्तरिक व्यवस्था है, जो सर्वमान्य है।

शास्त्रीय समय सभी स्थानो पर एक जैसा नहीं हो सकता इसलिये सम्पूर्ण भूमण्डल को अक्षांश एवं रेखांश में काल्पनिक रूप से विभाजित किया गया। इसकी परमावश्यकता ग्रहों के सही प्रभाव के आंकलन के लिये विशेष होती है। यह भी ग्रह की अपनी व्यवस्था है। इसका अन्य ग्रहों से कोई मतलब नहीं है।

अहोरात्र के उपरान्त भी समय को जानने के साधन जरूरी हैं। आयु का हिसाब किताब कैसे रखा जायेगा ? कैसे पता चलेगा कि कौन कितना छोटा अथवा बड़ा है ? कब अथवा किस समय कौन सी घटना हुई थी ? हम कैसे जानेंगे ? इसके काल के निरूपण के लिये भी तो समय की कोई प्रणाली होनी चाहिये। इसी ने संवतसर अथवा वर्ष की कल्पना को प्रकट किया। इसे हम चित्र द्वारा भी स्पष्ट कर सकते हैं।

प्रत्येक ग्रह सचराचर में अन्य किसी ग्रह की परिक्रमा कर रहा है। यदि हम परिक्रमा कर रहे ग्रह को, उसकी परिक्रमा के समय को ही इकाई के रूप में ग्रहण कर लें, तो हमारी समस्या का सहज ही निदान हो

जायेगा। परिक्रमा को संवतसर की संज्ञा प्रदान की गयी। कालान्तर में संवतसर का नया नाम **वर्ष** रख दिया गया। आज भी सम्पूर्ण भूमण्डल पर वेद की इसी व्यवस्था का वर्चस्व है।

पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। परिक्रमा छोटी हो अथवा बड़ी, उसके अंश सदा ३६० ही रहते हैं। इन्हीं ३६० अंश को ३६० तिथियों में विभाजित किया गया। परिक्रमा के १२ विभाग किये गये। यह मास अथवा महीने कहलाये। ३० तिथियों का एक मास बनाया गया। १२ मास का संवतसर अथवा वर्ष कहलाया। यह व्यवस्था आज भी सर्वमान्य है। यह वेद की आदि कालीन व्यवस्था है।

पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा कर रही है। उसीप्रकार अन्य ग्रह भी सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं। जरूरी तो नहीं कि सभी की परिक्रमा का समय एक जैसा ही हो ? पुनः, पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा के संवतसर को किसी दूसरे ग्रह पर तो थोपा नहीं जा सकता। इससे सब कुछ गड़बड़ हो जायेगा। ऐसा करने से सनातन सिद्धान्त का भी अनादर होगा। इसीलिये प्रत्येक ग्रह की सूर्य परिक्रमा को यथा ग्रह का संवतसर बनाया गया।

जितनी देर में पृथ्वी सूर्य की १२ परिक्रमा पूरी करती है, उतने समय में देवगुरू बृहस्पति सूर्य देव की एक परिक्रमा को प्राप्त होते हैं। अनुपात स्पष्ट हो गया। पृथ्वी के १२ वर्ष = १ वर्ष देव गुरू बृहस्पति।

जितने समय में पृथ्वी सूर्य की ३० परिक्रमा पूरी करती है, उतने समय में शनि ग्रह की एक परिक्रमा पूरी होती है। अनुपात स्पष्ट हो गया – पृथ्वी के ३० वर्ष = १ वर्ष शनि ग्रह। इसी प्रकार सभी सूर्य परिवार के ग्रहों के काल का निर्धारण किया गया।

चन्द्रमा, चूंकि पृथ्वी की ही परिक्रमा करता है, इसलिये अपवाद होने के कारण इसे पृथ्वी के परिक्रमा वर्ष से साधा गया। सिद्धान्त नहीं बदला गया। एक वर्ष पृथ्वी = १२ वर्ष चन्द्रमा लगभग।

इसी गणना को ज्योतिर्वेद की शाखा ज्योतिष में यथा ग्रहण किया गया। एक संवतसर को ही जन्म कुण्डली की संज्ञा प्रदान की गयी। १२ मास को १२ राशियों अथवा घरों में बांटा गया। गोचर के चलन को इन घरों में यथा दर्शाने की प्रक्रिया को ज्योतिष शास्त्र की संज्ञा प्रदान की गयी। आकाश को धरती पर उतार कर, उसके पड़ने वाले प्रभाव को प्रत्येक जातक पर जानने के विज्ञान का नाम रखा गया ज्योतिष शास्त्र। समय का ज्ञान सबको रहे तथा अनन्त से समय का जुड़ाव भी सटीक बना रहे। क्यों ? इसे आगे समयानुसार स्पष्ट करेंगे।

आचार्य बालकों को कुण्डली बनाना, जन्म कुण्डली से जातक के जन्म समय, काल तथा स्थान खोजने की कला सिखा रहे हैं। इस युग में प्रिंटिंग प्रेस, छापाखाना इत्यादि नहीं होते हैं। इतिहास को जीवित रहने के लिये ज्योतिष विज्ञान की शरण होना अनिवार्य है। इसी महाविज्ञान ने भरतखण्ड की महान भारत संस्कृति को जीवित रखा है।

बालक ज्योतिष शास्त्र के विज्ञान में पारंगत हो रहे हैं। वे इष्टकाल को समझ तथा इसे शुद्ध रूप से बनाने की प्रक्रिया में पारंगत हो रहे हैं। सूर्योदय से जन्म समय तक के बीते समय को इष्ट काल समझने के साथ ही गणित द्वारा शुद्ध किये जन्म समय को इष्टकाल मूल रूप से कहते हैं। धीरे धीरे यह महा विज्ञान उन्हें स्पष्ट हो रहा है।

उन्हें पञ्चांग से परिचत कराया जा रहा है। इस युग में प्रत्येक व्यक्ति को पञ्चांग बनाने में दक्ष होना अनिवार्य है। अन्यथा वह कभी ज्योतिष

में पारंगत हो ही नहीं सकता। उस युग में छपे छपाये पञ्चांग उपलब्ध नहीं होते। भोजपत्रों के अतिरिक्त कागज के कारखाने नहीं होते। प्रत्येक व्यक्ति को पञ्चांग, ज्योतिष, गणित, फलित आदि में व्यवहारिक रूप से दक्ष होना अनिवार्य है।

पञ्चांग के पांच अंग होते हैं – १. तिथि २. वार. ३. नक्षत्र. ४. योग. ५. करण। इन पांच अंगों को जोड़कर पञ्चांग बनता है। छात्रों को इन सबमें पारंगत होना अनिवार्य है।

इनके साथ ही बालकों को १२ राशियों के नाम, स्वरूप, गुण, धर्म, दिशा, स्वामी आदि का भी व्यापक ज्ञान कराया जा रहा है। लग्न तथा अन्य भावों का परिचय, उनके शरीर अंगों पर पड़ने वाले प्रभाव, सगे सम्बन्धियों पर पड़ने वाले प्रभाव, जीवन की विभिन्न उपलब्धियों पर पड़ने वाले प्रभाव आदि का ज्ञान बालकों को गम्भीरता से ग्रहण करना होगा।

ग्रहों का परिचय, उनके नाम एवं स्वरूप, मायाओं के गुरूत्वाकर्षण के नाना प्रभाव, उनके इकलौते और सामूहिक प्रभाव, जीवन के विभिन्न पहलुओं पर पड़ते प्रभाव आदि का व्यापक ज्ञान भी बालकों को ग्रहण करना होगा। सभी छात्रों के लिये धर्म ज्ञान एवं ज्योतिष सहित ज्योतिर्वेद अनिवार्य विषय हैं।

२७ नक्षत्रों का ज्ञान भी विस्तार से लेना होगा। यह अत्याधिक महत्वपूर्ण है। इसके बिना गणना संभव ही नहीं है।

क्या आकाश में केवल २७ नक्षत्र ही हैं ? जी नहीं ! अनगिनत, असंख्य नक्षत्र आकाश में निरन्तर विचरण करते हैं। फिर ज्योतिष में २७ नक्षत्र ही क्यों ?

वस्तुतः गणित की सुगमता के लिये हमने अपने हर ओर के आकाश को २७ भागों में बांटा है। जिन्हें २७ नक्षत्रों की संज्ञा प्रदान की है। पुनः प्रत्येक नक्षत्र के चार भाग किये गये, जिन्हें हम नक्षत्र चरण कहते हैं। इस प्रकार अपने चहुं ओर के आकाश को हमने २७ को ४ से गुणा किया = १०८ भाग किये। आपकी पूजा की माला के मनके भी १०८ ही रखे जाते हैं। १०८ भागों में सुदूर आकाश को विभक्त कर हम जान सकते हैं कि अमुक ग्रह किस नक्षत्र में किस चरण में है। अन्यथा इसका सही अन्दाज लगाना यदि असम्भव नहीं तो दुष्कर तो है ही। जब सारा सचराचर गतिमान हो, आप भी निरन्तर अपने ग्रह के साथ यात्रा कर रहे हों तो अनन्त आकाश में ग्रहों की सही अवस्था का भान कर पाना कितना जटिल होगा। आप इसकी सहज कल्पना कर सकते हैं।

काल निरूपण प्रणाली यहीं तक सीमित हो, ऐसा नहीं है। वेद के विज्ञान ने कहा सूर्य भी अन्य ग्रहों की भांति परिक्रमा पथ पर निरन्तर अग्रसर है। पृथ्वी, बुध, शुक्र, शनि आदि नाना ग्रह जहां सूर्य देव की निरन्तर परिक्रमा करते हैं, वहीं सूर्य देव भी अपने ग्रहों के परिवार के साथ निरन्तर देवलोक की परिक्रमा कर रहा है।

इसको भी समय की सीमा में बांधा गया है। जितने समय में पृथ्वी सूर्य की ४३,२०,००० परिक्रमा पूर्ण करती है, उतने समय में सूर्य, अपने सौर मंडल सहित देवलोक की एक परिक्रमा को प्राप्त होता है। वेद का उपरोक्त कथन अत्याधिक विस्मयकारी है। वे लोग इसे कैसे जानते थे ?

वर्तमान युग में भी विज्ञान ऐसा कहने का साहस कदापि नहीं कर सकता। दो ही मत निरन्तर आपस में टकराते रहते हैं। आकाश

निरन्तर प्रसार अथवा फैलाव में जा रहा है। इस विचार के प्रवर्तक गैलेलियो तथा उसके अनुयायी वैज्ञानिक हैं। इसके विपरीत दूसरा वैज्ञानिकों का समूह इसे स्थिर मानता है। दोनो पूरी तरह से स्पष्ट नहीं हैं। ना ही समुचित साक्ष्य एवं प्रमाण ही प्रकट कर पाये हैं।

तीसरा पक्ष आदि प्राचीन वेद का भी हमें नये सिरे से लेना होगा। यह दोनों से बिल्कुल हटकर हैं। तीसरे मत में समय की अवधि, दिशा, कोंण एवं अंशों की भी स्पष्ट चर्चा है। इसे आप किसी भी पञ्चांग के आरम्भ में पढ़ सकते हैं। हम इसकी चर्चा पूर्व में इसी खण्ड में कर आये हैं।

तीसरा आदि प्राचीन मत के अनुसार प्रसार अथवा स्थिर अवस्था आकाश का सही एवं समुचित आंकलन कदापि नहीं है। **सम्पूर्ण ग्रह, नक्षत्र एवं आकाशगंगायें प्रकृति के निर्धारित नियमों पर निरन्तर गति को अर्थात परिक्रमाओं को प्राप्त हैं**। इनका स्थिर होना इनका महाविनाश है। यदि सूर्य स्थिर हो जायेगा तो सूर्य मिट जायेगा। उसे आकाशगंगाओं की परिक्रमा करनी ही होगी। इसे श्रीकृष्ण ने श्रीमद्‌भगवतगीता में भी कहा है "आब्रह्मभुवनालोका पुनरावर्तनोऽर्जुन..."

महा आश्चर्य है ! जिनके पास विज्ञान के आधुनिक साधन भी नहीं थे, वे कैसे और क्योंकर जानते थे ? वे इस विज्ञान को नियमपूर्वक पत्रों में स्थान देकर आने वाली पीढ़ियों के लिये संचित क्यों करना चाहते थे ? वे भावी पीढ़ियों को क्या बताना चाहते थे ? क्या कोई अति महत्वपूर्ण रहस्य अथवा मनुष्य मात्र से जुड़ी एक अतीत की बहुमूल्य धरोहर, जो मानव मात्र की है तथा मानव मात्र को उसे पाना चाहिये ?

अभी हाल ही में खगोल शास्त्रियों ने एक रहस्य का उजागर किया है। आकाश गंगायें तेजी से हमारी पृथ्वी से दूर होती जा रही हैं। क्या वे भी चल रही हैं ? क्या सचमुच ऐसा ही है ?

आकाशगंगाओं का हमसे दूर होना, एक नहीं दो कारणों से हो सकता है। प्रथम वे गतिमान हैं तथा हमारे सौर मंडल से विपरीत दिशा में भाग रही हैं ! जैसा कि वर्तमान खगोलवेत्ताओं का मत है।

दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि हमारा सौर मंडल अपने परिक्रमा पथ पर निरन्तर अग्रसर होता उनसे विपरीत दिशा में अग्रसर हो रहा है ? जैसा कि वेद के वैज्ञानिकों का मत है। कलियुग पर्यन्त सौर मंडल आकाश गंगाओं से विपरीत होता अन्ध आकाश में विचरण करता है। सत्ययुग में प्रवेश करते ही यह परिक्रमा के पथ पर नियमित रूप से गतिमान होता पुनः आकाश गंगाओं के समीप होने लगता है ?

तीसरा कारण यह भी हो सकता है कि आकाशगंगायें तथा सौरमंडल दोनों ही अपनी नियमित गति के अनुरूप एक दूसरे से दूर हो रहे हों ? वेद का मत तीसरी अवस्था के साथ है। इसे हम पूर्व में पञ्चांग में दर्शाये गये पाठ में देख सकते हैं। ''....चार युग एक सहस्त्र बार निकल जाने पर ब्रह्मा जी का एक दिन बीत जाता है..... ''।

४३,२०,००० परिक्रमा को १००० से गुणा करने पर ब्रह्मा जी के एक दिन का मान आता है। इससे स्पष्ट है कि आकाशगंगायें भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की परिक्रमा करती रहती हैं। यहां ब्रह्मा जी से किसी व्यक्ति अथवा ऐसी ही कल्पना नितान्त हास्यास्पद है। ब्रह्मा जी के एक दिन का स्पष्ट अर्थ लिया जाना चाहिये **''ब्रह्माण्ड का एक दिन''** !

अर्थात **सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही गतिमान है।** समय की सीमा में बंधा हुआ है। गति ही ब्रह्माण्ड का जीवन, स्थायित्व एवं अमरता है।

देवलोक का अर्थ लिया जाना चाहिये **''आकाश गंगा''** ! ४३,२०,००० पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा बराबर है **एक दिन देवलोक के** ! अर्थात आकाश गंगा का एक अंश भ्रमण ! ३६० अंश बराबर एक परिक्रमा अर्थात एक वर्ष ! ज्योतिर्वेद को वेदों की आंखें इसीलिये कहा गया है।

४३,२०,००० गुणा १००० गुणा ३६० गुणा ५० पृथ्वी परिक्रमा वर्ष ब्रह्माण्ड की आयु के ५० वर्ष बीतने के उपरान्त ५१ वें वर्ष के प्रथम दिन के उदय की कहानी हम पहले ही पढ़ आये हैं। वेद के वैज्ञानिक जिन्हें हम ऋषि के सम्बोधन से जानते हैं, उन्हें यह सब क्यों और कैसे पता था ?

आप बचने के लिये कह सकते हैं कि यह सब कपोल कल्पित है। पञ्चांग व्यर्थ ही इसे युगों से लादे फिरते हैं। उस अवस्था में भी आपसे पूंछना चाहूंगा कि आपने कैसे जाना कि यह कपोल कल्पित है ? बिना किसी साक्ष्य और प्रमाण के आप कैसे किसी विषय को कपोल कल्पित कहकर ठुकरा सकते हैं ? परन्तु हम सबने लम्बे समय तक ऐसा ही किया है। पञ्चांग भले ही नियमित रूप से पूर्वजों की अमूल्य धरोहर के रूप में इन्हें पूर्ण सम्मान देते आये हों, परन्तु विद्वत जगत ने इन्हें उपेक्षा ही दी है। क्या ज्योतिष जगत को इसे समझना नहीं चाहिये था ?

बालक गुरूकुल के इस अमृत ज्ञान से वरद हो रहे हैं। उनके मन में भी जिज्ञासा है कि उनके पूर्वज किस प्रकार इस अदभुत ज्ञान से परिचित थे ? उन्हें यह ज्ञान किसने दिया था और क्यों ?

• जीवन कथा ! उतरती आकाश गंगाओं से !

बालक ज्योतिर्वेद के साथ ही ज्योतिष का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं। वे ६ ग्रहों, यथा सूर्य, चन्द्र, मंगल, गुरू, शुक्र, शनि, तथा छायाग्रहों राहु एवं केतु के साधारण रूप से परिचित हो चुके हैं। यह ग्रह पृथ्वी पर जीवन के संचार एवं जीवन के स्थायित्व के लिये परमावश्यक हैं। इनमें से यदि एक की कक्षा बदल दी जावे, तो पृथ्वी पर जीवन में भारी विनाश अथवा अनचाहे बदलाव सहज ही प्रकट हो जावेंगे। इनके गुरूत्वाकर्षण के कारण ही पृथ्वी पर वर्तमान जीवन सम्भव है। जीवन तो क्या, पृथ्वी ग्रह का स्थायित्व भी इन्हीं ग्रहों के कारण है। इनके बिना पृथ्वी सहज ही महाप्रलय को प्राप्त हो जायेगी। सौर मंडल के सम्पूर्ण ग्रह तथा उनके गुरूत्वाकर्षण के अनुपातिक समीकरण ही सौर मंडल के स्थायित्व की गारंटी हैं।

उन्होंने २७ नक्षत्र समूहों का साधारण परिचय भी ग्रहण किया है। वे नक्षत्र इस प्रकार हैं :— १. अश्विनी. २. भरणी. ३. कृतिका. ४. रोहिणी. ५. मृगशिरा. ६. आद्रा. ७. पुनर्वसु. ८. पुष्य. ६. आश्लेषा. १०. मघा. ११. पूर्वाफाल्गुनी. १२. उत्तराफाल्गुनी. १३. हस्त. १४. चित्रा. १५. स्वाति. १६. विशाखा. १७. अनुराधा. १८. ज्येष्ठा. १६. मूल. २०. पूर्वाषाढ़ा. २१. उत्तराषाढ़ा. २२. श्रवण. २३. धनिष्ठा. २४. शतभिषा. २५. पूर्वाभाद्रपद. २६. उत्तराभाद्रपद. २७. रेवती।

उन्हें आचार्य आकाश में इन्हें पहचानना तथा पढ़ना भी सिखा रहे हैं। पृथ्वी का धुरि भ्रमण तथा सूर्य की परिक्रमा को गोचर में पढ़ने एवं पहचानने का व्यवहारिक ज्ञान प्रदान कर रहे हैं। बालक अब आकाश में सहज ही १२ राशियों को जानने लगे हैं। वे राशियां हैं :— १. मेष. २. वृष. ३. मिथुन. ४. कर्क. ५. सिंह. ६. कन्या. ७. तुला. ८. वृश्चिक. ६.

धनु. १०. मकर. ११. कुम्भ. १२. मीन। वे आकाश को देखकर जान लेते हैं कि कौन सा ग्रह किस राशि के किस चरण में संचारित है। आकाश से पूछते हैं धरती का हाल !

वे भली प्रकार जानते हैं कि सम्पूर्ण सचराचर यात्री है, मुसाफिर है। एक सत्य के अतिरिक्त सब कुछ अस्थिर है। वे सब भी यात्री हैं। सोते जागते, उठते बैठते, खाते पीते, प्रत्येक समय हम सब यात्रा करते रहते हैं। जीवन भी एक यात्रा का नाम है। जन्म, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, यौवन, प्रौढ़ावस्था, बुढ़ापा और मृत्यु। मृत्यु पुनः नूतन जन्म को धारण करती यात्रा आरम्भ कर देती है। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा यात्रा पर निरन्तर है। सूर्य, देवलोक की निरन्तर यात्रा कर रहा है। देवलोक ब्रह्माण्ड की निरन्तर यात्रा में लगा हुआ है। एक क्षीरसागर, नीला आकाश ही सत्य, आत्मा की भांति स्थिर है।

देह के भीतर मन, इन्द्रियां, विचार, अंग और अवयव, सांसें, धड़कने सभी कुछ निरन्तर चलायमान है, यात्री है। यहां तक कि नाते, रिश्ते, सम्बन्ध, सभी कुछ ! सुबह, दिन, सायं, रात्रि, पुनः ब्रह्ममुहुर्त, मौसम, ऋतुएं भी ! सभी कुछ चलायमान है। शायद, कहना चाह रहा कि गति ही जीवन का दूसरा नाम है।

ग्रह गुरूत्वाकर्षण के द्वारा आपस में भिड़े हुए हैं। एक निरन्तर युद्ध में संलग्न हैं। आकर्षण विकर्षण के महासंग्राम में दूर रहकर भी साथ साथ भिड़े हुए हैं। यह संग्राम ही उनके जीवन का स्थायित्व है। उनके अस्तित्व की पहचान है। पृथ्वी से आकाश तक, मानव से दानवाकार ग्रह तक सबकुछ एक जैसा ही है। यही सनातन नियम है। यही देवासुर संग्राम की कहानी है। संग्राम है तो जीवन है, संग्राम ही जीवन है।

जीवन की अजस्र धारा क्षीरसागर से प्रस्फुटित होकर ग्रहों पर आती है। फिर ब्याह कर आयी दुलहिन की तरह अपने ससुराल अर्थात पृथ्वी की होकर रह जाती है। यही है कहानी मानव जीवन की। इसे ही पढ़ रहे हैं छात्र, गुरूकुल में ! एक अविश्वसनीय सी, विश्वास भरी कथा ! मेरी कहानी, हम सब की कहानी ! सुनते बालक, स्तब्ध होकर !

मानव के शरीर के तीन प्रमुख प्रभाग हैं। आत्मा, जो अमर सर्वशक्तिमान है। जीव अथवा जीवात्मा, जो आत्मा के द्वारा क्षीरसागर में उत्पन्न किया गया है। जीवन की पाठशाला का छात्र है। यही गुरूकुल में भी छात्र है। शरीर, जो माया में जीव के स्थायित्व तथा जीवन का साधन है, रक्षक है, यान है। शरीर का सृजन भी क्षीर सागर में ही सुगम है। इसीलिये यह मायारहित क्षेत्र अर्थात माता के गर्भ रूपी क्षीरसागर में, आत्मा द्वारा, जीव के जीवन के हित में सृजित होता है। १. आत्मा. २. जीवात्मा. ३. शरीर। ये ही मानव जीवन अथवा किसी भी जीव योनि के साधारणतया तीन प्रमुख प्रभाग हैं। जीवन पहेली के सूत्र हैं।

यत् पिण्डे : तत् ब्रह्माण्डे ! यही प्रभाग सम्पूर्ण सृष्टि के हैं। जीवन एक महासमर, महाभारत युद्ध है। युद्ध ही जीवन है। पांच तत्वों से बना शरीर ही महाभारत महाकाव्य का पाण्डु है। शरीर पाण्डु की दो पत्नियां हैं, कुन्ती और माद्री ! कुन्ठा से कुन्तल सा ज्ञान लाने वाली कुन्ती तथा भौतिक जीवन से लिपटने की, कुछ कर दिखाने की चाहत, माद्री ! इनसे मन्त्रों द्वारा प्रकट होते हैं पांच पाण्डव ! धर्म का भाव, धर्मपुत्र युधिष्ठिर। संकल्प शक्ति, वायुपुत्र भीम ! निर्णायक बुद्धि, जीव के प्रतीक, अर्जुन ! ज्ञान के भण्डार के प्रतीक नकुल ! भक्ति का जीवन्त रूप, सहदेव ! संज्ञा ही पांचों भावों की उभय पत्नी द्रौपदी है, जो यज्ञ से उत्पन्न है। संज्ञा से शून्य होकर कोई भी भाव क्रियाशील नहीं हो सकता ! संज्ञा रूपी द्रौपदी के पांच ही पुत्र हैं, पांच

तन्मात्राओं के प्रतीक । १. रूप. २. रस. ३. गन्ध. ४. शब्द. ५. स्पर्श। इसके अतिरिक्त सुभद्रा (दिव्य एवं भद्र) पुत्र अभिमन्यु (अभि = सम्मुख होना, प्रवेश करना। मन्यु = यज्ञकी ज्वाला।) हैं। कुन्ती का एक कुंवारा बेटा भी है। सूर्य पुत्र कर्ण ! सूर्य अर्थात आत्मा द्वारा प्रदत्त पूर्व जन्म का ज्ञान, जो वर्तमान शरीर पाण्डु का अंग नही है। इसलिये कुंवारा है।

स्वयं से तथा सृष्टि से अनभिज्ञता के अज्ञान को ही अन्धा धृतराष्ट्र कहा है। जानबूझकर आसक्तियों की पट्टी आंखों पर बान्धने की मनोवृति, धृतराष्ट्र की पत्नी, गान्धारी है। इन्हीं की अन्धता से उत्पन्न नाना आसक्तियां ही कौरव हैं। जीवन एक महासमर है। हम सब जीवन पर्यन्त इसी महाभारत के सारे पात्रों को जीते झेलते अगली यात्रा पर मरकर चल देते हैं। वेदव्यास ने एक सत्य ऐतिहासिक घटना को उदाहरण स्वरूप ग्रहण करते हुये, इस महाकाव्य में, प्रत्येक छात्र को गुरूकुल में उसके स्वयं के नाना रूप, गुण, धर्म, विसंगतियां, नाना राहें और आत्मा का नित्य सत्य पढ़ाया है। मायाओं से जूझता, मैं और मेरा शरीर, आत्मा ही सारथि श्रीकृष्ण है, जीवात्मा महारथी अर्जुन, शरीर रथ है। मायाओं का महासमर महाभारत है। श्रीकृष्ण और अर्जुन, ये दोनो ही अमर हैं। नर और नारायण के अवतार हैं। आत्मा अजन्मा अविनाशी है तो जीव, भले क्षीरसागर में जन्मा है, परन्तु मरने के लिये कदापि नहीं, अपने पिता आत्मा की भांति ही अविनाशी होने के लिये। कल नर ही नारायण के सदृश्य होगा। रूप बदलते रहेंगे। योनियां बदलती रहेंगी। शरीर विखंडित और पुनर्निर्मित होते रहेंगे। जीव वस्त्र की भांति शरीर बदलता रहेगा। जब तक आत्मा की अवस्था न पा जाये।

इतिहास को उदाहरण स्वरूप लेता, प्रत्येक छात्र को उसके जीवन के रहस्यों का स्पष्ट दर्शन कराता, ज्योतिर्वेद के नाना अंगों को निसन्देह

रूप से दर्शाता एक युगान्तर अमर महाकाव्य ! ज्योतिर्वेद और मनुसंहिता का अगाध भण्डार ! कभी सुनायेंगे इस कालजयी महाकाव्य के कथा रहस्य ! नाना ज्ञान विज्ञान, इतिहास, पुराण, सृष्टि उत्पति के रहस्य, ज्योतिष, कर्मकाण्ड, नाना वेद और संहिताओं का महाभाष्य ग्रन्थ !

१. **आत्मा** जो परमात्मा (परम् + आत्मा) का लीला अवतार है। प्रत्येक शरीर रूपी घर को बनाता, सजाता संवारता और निरन्तर शरीर एवं जीव की रक्षा **''शबरी का राम''** बन अहर्निश करता है। असीम प्रेम और अनुराग लुटाता हुआ। अजर अमर अविनाशी है।

२. **जीव अथवा जीवात्मा** जो क्षीर सागर में परमेश्वर के द्वारा उत्पन्न है। जो आत्मा से अद्वैत कर, सृष्टि उत्पति के ज्ञान को ग्रहण कर परम सत्ता में नित्य वास करना चाहता है। जहां आत्मा दाता है, जीव भोक्ता है। आत्मा गुरू है, जीव शिष्य है। जीव भक्त है, आत्मा भगवान है। जीव को आत्मा से सम्पूर्ण ज्ञान अनन्य भक्त बनकर ग्रहण करना है। इसी उद्धेश्य के लिये ही मानव योनि की कल्पना है।

३. **शरीर** एक जीवन्त घर है। आत्मा द्वारा, माता के गर्भ के क्षीरसागर में, निर्मित है। जीव को इसका कोई ज्ञान नहीं है। एक ऐसा घर, जो अनुभूतियों, विचारों, भावों और भावनाओं के साथ जीव से पूर्ण रूपेण प्रतिध्वनित होता है। मायाओं के महासमर में इसका प्रत्येक कोश कौरवी मायाओं (गुरूत्वाकर्षण शक्ति) से संघर्ष करता जीव के स्थायित्व के लिये क्षीरसागर की मर्यादा रक्षा, निरन्तर बलिदान देकर करता है। प्रत्येक कोश स्वयं नष्ट होकर, जीव के हित में जीवन की संम्भावना

को बनाये रखता है। बस कुछ दिन जीयेगा, फिर महासमर में आहुति है। रक्त कण भी महारथी बन लड़ेंगे जीव को समय दिलाने के हित में, फिर उन्हें भी इस महासमर में वीरगति को जाना होगा । कुल ३ महीने और बीस दिन, बस इतनी ही जिन्दगी ! युद्ध चलता रहेगा । सेनायें कटती रहेंगी । जीव के हित में समय चुराती रहेंगी। क्या जीव समय का सदुपयोग कर पायेगा ? आत्मा से अद्वैत कर नित्य राह ले पायेगा ? कहीं सारे बलिदान व्यर्थ होकर निर्मम हत्याओं के पाप भर बन जीव को प्रायश्चित के लिये, पतित योनियों में तो नहीं भटकावेंगे ?

यही जीवन के समीकरण सभी धर्मग्रन्थों में सशक्त प्रकट होते हैं। जीवन पहेली में केवल कोश को पहेली का सूत्र मान कर खोजना कितना सही होगा ? इसी खोज ने एमीबा और बैक्टीरिया को खोज का बिन्दु बना दिया।

ग्रहों नक्षत्रों और आकाशगंगाओं में भी, इसे ही सम्पूर्णता से उनके जीवन का सूत्र बनाया गया है। जैसे शरीर के गर्भ में यज्ञ के द्वारा शिशु की सृष्टि होती है; उसी प्रकार, हिरण्य गर्भ में, क्षीर सागर में, सूक्ष्म ब्रह्म बिन्दुओं से ग्रहों नक्षत्रों आदि की सृष्टि होती है। नियम सनातन हैं। सर्वत्र समान हैं।

धड़ाकों से विनाश तो हो सकता है। परन्तु सृष्टि ? पता नहीं ! वैसे धड़ाकों से शिशु बनते हमने कभी नहीं सुने ! ६ महीना और कुछ दिन, इन्तजार तो करनी ही पड़ती है ?

उत्पति के सूत्र का खुलासा करें, वेद की धाराओं में :–

ॐ ऋतन्च सत्यन्चाभीद्वातपसो अध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधि संवतसरो अजायत। अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्यमिशतो वशी। सूर्यचन्द्रमसौधाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवन्च पृथ्वीन्चान्तरिक्षमथो स्वः।।

ऋत कहते हैं आत्मा को। आत्मा को ही ब्रह्म अथवा ब्रह्मा अन्यत्र कहा है। यही घट में वास करने वाला ईश्वर है। इसके ही नाना नाम हैं। **सत्य** कहते हैं जीव और प्रकृति को ! इन सबका जनक आत्मा ही है। उपरोक्त ऋचा में एक प्रणय कथा है। एक कहानी ऐसी जो निरन्तर है ! हर ओर सदा दुहरायी जाती है। समय और सृष्टि के यज्ञ निरन्तर इस कथा को दुहराते थकते नहीं हैं। ऋत अकेला था। हर ओर शांति व्याप्त थी। हर ओर नीरवता और स्तब्धता का वास था। ऋत की इच्छा से सत्य ने प्रकट होकर अंगड़ाई ली। दोनो ने एक दूसरे को देखा और विस्मित हो उठे। प्रणय की कोमल भावनायें उनमें उंसांसे भरने लगीं। और तब......

परमेश्वर अर्थात ॐ (अ् +उ् + म = उत्पति (धारण) + पालन (सृजन) + संहार (प्रलय एवं मोक्ष) ब्रह्मा, विष्णु, महेश) ने ऋत् , आत्मा के रूप में, सत्य, प्रकृति रूपी जीवात्मा का वरण किया। **ऋतम् च सत्यम् च** आत्मा और जीव **अभि द्वात्** दोनो थे सम्मुख **अपसो** आकाश में, क्षीरसागर में **अध्यजायत** उत्पति के लिये, सृष्टि, संतति के लिये। वे हंसे, खिलखिलाये ! उनकी मोहक हंसी और खिलखिलाहट से आकाश गंगायें ग्रह और नक्षत्र प्रकट होने लगे, उत्पन्न होने लगे। वे नाचे,

आकाशगंगायें, ग्रह और नक्षत्र भी उनका अनुसरण करते नाचने लगे। परिक्रमायें करने लगे। **समुद्रादर्ववादधि** क्षीर सागर दही सा मथ डाला उन्होंने अपने नृत्य से संवतसर का जन्म हो गया , **संवतसरो अजायत** परिक्रमाओं से संवतसरों की उत्पति हुई। अहोरात्रि (दिन और रात) जन्में उनके झूमने से **अहोरात्राणि** और प्रकट होने लगा जीवन्त जगत सचराचर उनकी इच्छा मात्र से **विदधद्विश्वस्यमिशतो वशी** । सूर्य, चन्द्र आदि सौर मण्डल प्रकट होकर काल, कल्प की उत्पति, परिक्रमाओं द्वारा प्रकट करने लगा, इस प्रकार चतुर्युगी का जन्म हुआ। **सूर्यचन्द्रमसौधाता यथापूर्वमकल्पयत।** यही प्रक्रिया निशि दिन पृथ्वी और आकाश में निरन्तर अमर लीला बन खेली जाती रही है। खेली जाती रहेगी। **दिवन्च पृथ्वीन्चान्तरिक्षमथो स्वः।।** आत्मा और प्रकृति की प्रणय लीला की अमर गाथा ही सचराचर के प्रकट होने की कहानी है। उनका प्रेम अमर है। कथा निरन्तर है। निरन्तर रहेगी कहानी सचराचर की।

ज्योतिर्वेद के उपरोक्त सूत्र में सृष्टि की काव्यमय कल्पना को स्मृति में अमर करने के लिये सन्ध्योपसना के कर्मकाण्ड के साथ जोड़ा गया। जिसे धर्मावलम्बी नित्य करते हैं। इसी प्रकार के सूत्र हमें अन्य ऋषियों के वेद गान में मिलते हैं। वेदादिक ग्रन्थों के गम्भीर चिन्तन से उत्पति की एक अद्‌भुत कथा उभर कर सामने आती है। यह कल्पना आधुनिक सभी मान्यताओं को अस्वीकार करती हमें एक नयी दिशा में खोजने की प्रेरणा देती है। पहले हम संभावना कथा करें, फिर उसके साक्ष्य एवं प्रमाण तथा प्रकृति के नियमों की अनुकूलता पर विचार करें।

जीवन को पृथ्वी पर उतारा गया था। यह जीवन आकाशगंगाओं से लाया गया था। इस प्रकार की आख्यका तथा संकेतों की वेद में भरमार है। क्यों ? कैसे ? इन प्रश्नों के उत्तर भी हमें मिल जाते हैं।

कब ? इसके उत्तर, भले ही अस्पष्ट से, हम इन ग्रन्थों में खोज सकते हैं। प्रश्न जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण है कि जीवन आकाशगंगाओं में भी आया कैसे ? जीवन बना कैसे तथा इसका विस्तार कैसे, कब, और क्यों हुआ ?

निशब्द, मौन, चेष्ठारहित एक आकाश की कल्पना हम सब करते हैं। सब विद्वान और खोजी इस बात से सहमत हैं कि पहले ऐसा ही था। फिर एक धड़ाका अथवा महानाद से सम्पूर्ण सचराचर में हलचल होने लगी। यह एक आसान सा उत्तर है जो सहज ही सबके गले उतर जाता है। गैसों के टकराने और विस्फोट से हलचल प्रारम्भ हो गयी। यह गैसे कहां से आयीं ? हलचल क्यों और कब हुई ? इसका उत्तर किसी के पास नहीं है। तब फिर पूर्व काल में क्या था ? **बिगबैगं** के अलावा कोई कल्पना भी तो पूर्वानुमान में नहीं सोची जा सकती, जो सहज ही सबको लगभग सही सम्भावना सी लगे। वेद की उपरोक्त ऋचा में भी उत्पति के रहस्य पूरी तरह स्पष्ट नहीं हैं।

यहीं पर आदि मानव की कल्पना हमारे सामने एक सशक्त विकल्प लेकर प्रकट होती है। हमारी इस गम्भीर खोज में नये सुन्दर एवं मनोहारी रंग भरने लगती है। एक अजन्मा, नित्य, स्वयंभू, सर्वशक्तिमान परमेश्वर ! **ऋत !** उन्मुक्त है, मस्त है, अपनी कल्पनाओं में रंग भरता उन्हे जीवन्त प्रकट करता चला जाता है। प्रेम और मस्ती का अनन्त सागर है। उसकी प्रत्येक कल्पना जीवन्त एवं साकार हो यथा प्रकट हो जाती है। यह एक आसान सा उत्तर हो सकता है। विज्ञान और धर्म दोनो ही अपने अपने पूर्वानुमान पर अड़े हुए हैं। दोनो अपने अपने पूर्वानुमान को आधार मानकर पहेली के समुचित उत्तर खोजने में लगे हुए हैं। दोनो ने अपने अपने समीकरण के पूर्वानुमान स्थापित कर दिये हैं। समीकरण का हल अभी दूर है। आधुनिक विज्ञान के गणित का

पूर्वानुमानित शब्द है **बिगबैंग** ! समीकरण के अगले गणित अभी अस्पष्ट हैं। खोज की दिशा में सशक्त प्रयास जारी है।

आदि विज्ञान की खोज के समीकरण का पूर्वानुमानित शब्द है – परमेश्वर, गाड, अल्लाह ! यथा भाषा तथा धर्म में लिया गया समीकरण का पूर्वानुमानित मूल्य। वेदादिक ग्रन्थों में इस समीकरण का विस्तार इस प्रकार है।

सचराचर का कर्ता धर्ता ऋत अर्थात परमेश्वर है। इसलिये सृष्टि = परमेश्वर। परमेश्वर = ॐ। ॐ = अ् + उ् + म।
अ् = अस्तित्व = तत्व सृष्टि = सूक्ष्मब्रह्म बिन्दुओं का निर्माण, जीवात्माओं की सृष्टि = ज्ञान विचार सृष्टि = ब्रह्मा।
उ् = उत्थान, उत्पति = पालन, रक्षण, उपलब्धियां = ऐश्वर्य = सुखी जीवन्त सचराचर = विष्णु।
म = मृत्यु = प्रलय = मृत्युञ्जय = मोक्ष, अमर अवस्था = महेश, शिवशंकर।

लगभग ऐसे ही समीकरण गाड तथा अल्लाह मैं भी उनके नामों में निहित से लगते हैं। ये तीन अक्षर से ही बने हैं।

ऐसा लगता है जैसे गणित अथवा एलजेबरा अथवा ज्यामिति का प्रश्न हम हल कर रहे हैं। ऐसा सोचना, कम से कम, वेद में तो गलत कदापि नहीं है। वेद में जीवन गणित को ही **ऋत** अथवा **ॐ** के रूप में दर्शाया गया है। ऋषि वैदिक काल के वैज्ञानिक हैं। हमें इसे सदा याद रखना चाहिये।

इसी गणित के समीकरण में जीवन तीन भागों में विभक्त किया गया। आत्मा, जीवात्मा तथा शरीर ! तीनों का सम्मिश्रण ही सृष्टि है।

समीकरण ने अगले चरण में यज्ञ को सृष्टि के मूल में ग्रहण किया। एक विशुद्ध वैज्ञानिक प्रक्रिया में वेद अपने समीकरण के गणित लेकर समस्या के हल की ओर बढ़ता है। यज्ञ = य + ज्ञ। य = उत्पति। ज्ञ = ज्ञात करना अथवा प्रकट होना। समीकरण अपनी दिशा में बढ़ता चलता है।

यज्ञ, यज्ञोपवीत तथा ऋग्वेद के प्रथम ऋषि मधुच्छन्दा के अमृत ज्ञान को हम दूसरे खण्ड में संक्षेप में, गुरूकुल की मर्यादा में पढ़ आये हैं। यज्ञ के द्वारा सृष्टि एवं उत्पति के रहस्य धीरे धीरे खुलने लगे हैं। समिधा, सामिग्री, हवनकुण्ड, यजमान और आचार्य वाले वाहय यज्ञ ही केवल यज्ञ नहीं हैं। वे यज्ञ की वाहय कल्पना हैं। यज्ञ से पूर्व के महास्नान अथवा सृष्टि यज्ञ की स्मृति को सर्वसाधारण में नित्य अमर रखने की महान प्रक्रिया के बहुमूल्य अंग हैं।

यज्ञ का ऋग्वेद में, स्वरूप कुछ अलग भी है। आत्मा यज्ञ का अधिष्ठित देव है। प्राणवायु यज्ञ का उपाचार्य है। ब्रह्मज्वाला, सोम ज्योतियां ही यज्ञ की ज्वाला हैं। इनके नौ (९) प्रधान रूप ही नवदुर्गा के रूप में पूजे जाते हैं। प्रकृति (भस्मी, मिट्टी, अन्न अथवा शरीर) ही यज्ञ की सामिग्री है। जीव अथवा जीवात्मा यजमान है। यह यज्ञ का दूसरा स्वरूप है।

यज्ञ का तीसरा स्वरूप है ग्रहों, नक्षत्रों, आकाशगंगाओं तथा सम्पूर्ण सचराचर की सृष्टि। ज्योतिर्वेद के मतानुसार सम्पूर्ण सचराचर यज्ञ के द्वारा उत्पन्न होता है। **यज्ञ** भी हमारे जीवन समीकरण का **मूल्य** है, ऐसा हमें मानना होगा। वेद का विज्ञान इसी समीकरण द्वारा ही सिद्ध होता है। समीकरण के कुछ शब्द और भी हैं, जिन्हें स्पष्ट किये बिना हमारा समीकरण आगे नहीं बढ़ सकता।

माया ! इस शब्द का वैज्ञानिक अर्थ भी हमें खोजना होगा। इस शब्द का प्रयोग धर्मग्रन्थों में नाना प्रकार से नाना अर्थों में होता है। साधारण बोलचाल की भाषा में भी यह शब्द बड़ा मायावी है। इसकी अनूठी माया है। इसपर किसी की माया आसानी से चलती भी नहीं। इसका विशुद्ध शाब्दिक अर्थ वेद में क्या है ?

दो अथवा अनेक ध्रुवों के मध्य का आकर्षण विकर्षण ही **माया** है। आप इसे अंग्रेजी में **ग्रेविटी** (gravity) कह सकते हैं। दो ग्रहों के मध्य का आकर्षण विकर्षण को माया नाम से ज़ाना जाता है। यथा पृथ्वी माया, सूर्य माया, बृहस्पति ग्रह की माया आदि। इस माया का विस्तार अनन्त है। **यत् पिण्डे : तत् ब्रह्माण्डे !** ज्योतिर्वेद के इस सूत्र से माया का विस्तार अत्याधिक हो उठता है। दो जीवों के मध्य का आकर्षण विकर्षण भी माया है। ईश्वर और जीव के मध्य भक्ति समर्पण भी माया है। जीव का आसक्त होना भी माया है। इसकी चर्चा हम प्रथम खण्ड में भी कर आये हैं।

क्षीरसागर ! इस शब्द का प्रयोग भी धर्म ग्रन्थों में निरन्तर होता है। इसका सीधा सपाट अर्थ ज्योतिर्वेद में बस इतना ही है **माया रहित क्षेत्र** ! वह स्थान जहां माया निष्प्रभावी है। इसी स्थान पर महाविष्णु शेष शैया पर विश्राम करते हैं। इस स्थान को क्षीरसागर कहते हैं। माया उनकी चेली है। वे मायापति हैं। विष्णु का कार्य है ब्रह्मा के द्वारा उत्पन्न ब्रह्म बिन्दुओं से, जीवन्त सृष्टि को प्रकट करना, उनका पालन करना तथा उन्हें समृद्धि से वरद करना। ऐसा करने के लिये ही वह क्षीरसागर में रहते हैं। क्षीरसागर के अधिष्ठाता कहलाते हैं। क्षीरसागर अर्थात मायारहित क्षेत्र, जिसे आप अंग्रजी में **स्पेस** (space) के नाम से जानते हैं। यहां पुनः आपको ज्योतिर्वेद के उसी सूत्र में जाना होगा। **यत् पिण्डे : तत् ब्रह्माण्डे !** के सिद्धान्त सूत्र के अनुसार प्रत्येक शरीर में क्षीरसागर विद्यमान है। आत्मा जो विष्णु का

लीलावतार है, देह के क्षीरसागर में वास करता है। घटघट वासी है। आत्मा ही बनके शबरी का राम जीव मात्र की जूठन को यज्ञ के द्वारा रक्त, मांस, मज्जा, शक्ति, विचार, सामर्थ्य प्रदान करता हुआ उसे यथा सन्तति से वरद करता है। ऐसा यज्ञ के द्वारा ही सम्भव है। ऐसा यज्ञ क्षीर सागर में ही सुगम है।

गंगा भी क्षीरसागर में रहती है। यज्ञ के द्वारा प्रकट हुई है। श्रीमद्‌भगवतगीता में श्रीकृष्ण ने कहा, जल की उत्पति यज्ञ के द्वारा होती है। इससे भी स्पष्ट हो जाना चाहिये कि यज्ञ का शब्द को सही अर्थों में हमें पहचानना होगा। वेद की शब्दावली को समझे बिना अतीत के इस महा विज्ञान को समझ पाना ही सम्भव नहीं होगा। ग्रहों एवं नक्षत्रों की उत्पति भी यज्ञ के द्वारा होती है। यह सब क्षीरसागर में ही सम्भव है। माया में प्रलय होती है। इसलिये प्रलय के देवता महाशिव पृथ्वी पर कैलाश पर्वत में निवास करते हैं। उन्हें क्षीरसागर में रहने की अनिवार्यता नहीं है।

ग्रहों की संरचना, स्वरूप, तथा स्थिति में भी भेद है। आवश्यक नहीं कि प्रत्येक ग्रह जीवन को धारण करने की सामर्थ्य से युक्त हो। उदाहरण के लिये पृथ्वी और समीपस्थ ग्रह बृहस्पति को ही लें। दोनो ग्रह हैं। परन्तु दोनो में भारी भेद है। बृहस्पति ग्रह होते हुए भी ग्रह नहीं है। वह एक छोटे सूर्य के समान दहकता हुआ आग का गोला है। उसका गुरूत्वाकर्षण भी पृथ्वी से कई सौ गुना अधिक है। उसकी संज्ञा वेद में देवग्रह की है। देवग्रह वे ही ग्रह हैं जो निरन्तर यज्ञ की महाज्वालाओं को प्राप्त हैं। धधकते हुए यज्ञकुण्ड के समान हैं। बृहस्पति को देवगुरू का सम्मान प्राप्त है।

पूर्व काल में यह ग्रह पृथ्वी से दूर था। पृथ्वी उल्कापातों की मार के कारण निरन्तर नष्ट हो जाती थी। जीवन यहां पर अधिक देर तक

टिक नहीं पाता था। जीवन के धरा पर अवतरण के उपरान्त भी जीवन बराबर उल्कापातों तथा ज्वालामुखी विस्फोट के कारण नष्ट होता रहा। मैमल प्रजातियों के महाविनाश का यह भी एक प्रमुख कारण हो सकता है। **तब देवताओं नें पृथ्वी की रक्षा के लिये बृहस्पति ग्रह की कक्षा तथा स्थान बदल कर धरती के समीप किया।** इससे पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण में भारी बदलाव आया। साथ ही बृहस्पति ग्रह की भारी माया के घेरे में आ जाने के कारण उसकी उल्कापातों से भी रक्षा होने लगी। सारे भारी उल्कापिण्ड बृहस्पति की माया के प्रभाव में आकर भस्म होने लगे। पृथ्वी की माया को संतुलित करने के उपरान्त जल को धरा पर पुनः चन्द्रमा के गुरूत्वाकर्षण से प्रभावित करके पृथ्वी पर उतारा गया था। जिससे पृथ्वी की कक्षा में बदलाव नहीं आया। इस प्रकार की नाना कथायें हमें प्राचीन काल में मिलती हैं। समय के साथ इन्हें धर्म और अन्ध आस्था के सहारे अपने अस्तित्व को बनाये रखना पड़ा। इसका इन्हें दण्ड भी मिला। इन्हें विज्ञान की सत्ता को खोकर, काल्पनिक होने का अपमान आज भी सहना पड़ रहा है। गंगावतरण की कथा इसका सशक्त उदाहरण है। जिसकी संक्षिप्त चर्चा हम **ज्योतिर्वेद के विभिन्न सोपान - प्रथम खण्ड** में कर चुके हैं।

जीवन पृथ्वी पर क्षीरसागर से उतारा गया था तथा गुरूत्वाकर्षण में जीवन को स्थायी रहने के लिये ही शरीर रूपी कल्पना को साकार किया गया था। जीवन को माया से निरन्तर संघर्षरत रहना पड़ेगा, इसी कल्पना के चलते ग्रहों की परिक्रमाओं तथा दूरियों को भी सही किया गया था। इसकी चर्चा आदि प्राचीन ग्रंथों में लीलाकथाओं तथा उपमाओं के रूप में व्यापक मिलती है।

इससे स्पष्ट होता है कि भविष्य में भी यदि मानव विज्ञान को जीवन को अन्य ग्रहों, जैसे मंगल अथवा शुक्र ग्रह पर स्थापित करने से पूर्व उन ग्रहों की मायाओं को अन्य ग्रहों एवं नक्षत्रों के साथ सुव्यवस्थित

करने के उपरान्त ही जीवन अवतरण की कल्पना साकार कर सकते हैं। हमें अतीत के वैज्ञानिक अनुसन्धानों को गम्भीरता से लेना होगा।

गुरूकुल के पावन वातावरण में छात्र ब्रह्मचारी ज्योतिर्वेद तथा ज्योतिष विज्ञान के माध्यम से अपना परिचय ग्रहण करते सचराचर के रहस्यों में पारंगत हो रहे हैं। दूर आकाश में विचरण करते ग्रहों का उनके शरीर, उनकी मानसिकता तथा व्यक्तित्व पर कितना गहरा तथा कितना निर्णायक प्रभाव पड़ता है, बालक इस कल्पना से हैरान हैं। ग्रहों, नक्षत्रों, यहां तक कि उल्काओं से पृथ्वी पर परिर्वतन तथा विनाश की कल्पनायें एवं परिणाम को वे आश्चर्यचकित ग्रहण कर रहे हैं। पृथ्वी एक ऐसा घर है जिसकी छत ही नहीं है। जब भी चाहे, उल्का अथवा धूम्रकेतु इस घर में घुस आये, कोई रोक नहीं है। ऐसा अतीत में बहुत बार हुआ है। ऐसा भविष्य में कभी भी, बारम्बार हो सकता है। बिना छत के मकान में बसा जीवन कभी भी ध्वस्त हो सकता है। मानव ने अतीत के युगों में इन विनाश लीलाओं को सहा है। विनाश को सहकर पुनः जीवन को प्रकट किया है। गुरूकुल वर्तमान में भी एक ऐसी ही विनाश लीला से उभरने के लिये प्रयत्नशील हैं।

धूम्रकेतु ने जीवन के सारे समीकरण ध्वस्त कर दिये हैं। जम्बुद्वीप (पृथ्वी, सम्पूर्ण एवं अखण्ड ग्रह का पूर्व नाम) भी टुकड़ों में बदलता, द्वीपों में ढलता चला गया है। हिमखण्ड, धूम्रकेतु की अग्नि से पिघल कर सारी धरती पर प्रलय का ताण्डव कर चुके हैं। इस कथा को हम प्रथम खण्ड में पढ़ आये हैं। मैदान, कई कई मील सागर के भीतर समा गये हैं। ज्ञान विज्ञान, सूचना तन्त्र, देवयान, सबकुछ मिट गया है। केवल पर्वतों पर ही इक्का दुक्का मानव बचे हैं। उनके पास क्षीरसागर अथवा आकाशगंगाओं को भी सूचना देने के साधन भी नहीं है। क्षीरसागर और आकाशगंगाओं ने जो सूचनायें भेजी हैं उन्हें ग्रहण करने के साधन भी तो नहीं हैं। कैसे उन्हें बताया जाये कि जीवन

अभी भी धरती पर शेष है ? सूचना तन्त्र तो मीलों पानी में डूब चुके हैं। सूर्यपरिवार भी कलियुग पर्यन्त आकाशगंगाओं से विपरीत दिशा में परिक्रमा वृत्त पर अग्रसर रहेगा। आकाशगंगाओं की परिक्रमा भी उससे विपरीत दिशा में होगी। वे सत्ययुग में परिक्रमा करते पुनः समीप होंगे। तब तक उन्हें अपने अस्तित्व को बनाये रखना होगा। स्मृतियों की रक्षा करनी होगी। अपनी पहचान को जीवित बनाये रखना होगा। क्या आपको उनकी इसी तड़प का आभास पूर्व के खण्डों में नहीं हुआ है ? जब बाहर का सूचना तन्त्र ध्वस्त हो चुका हो तो क्या आप आत्मा के द्वारा अपने लोगों तक पहुंचना नहीं चाहेंगे ? उनसे सम्बन्ध स्थापित करना, नहीं चाहेंगे ? कुछ ऐसी ही मार्मिक हताशा हमें अतीत के साहित्य में बार बार, बहुत गहराई से छू जाती है। यज्ञ के द्वारा लौटकर पुनः क्षीरसागर पाना, इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

एक उदाहरण रखना चाहूंगा, आपके सम्मुख ! जब किसी का, कोई अतिशय प्रिय मर जाता है। तब क्या वह उसे अपने मन के गहन अन्तरालों में पाने का असफल प्रयास नहीं करता ? वह कहां है ? इसे जानने की तड़प, उसे मन्दिरों, ज्ञानियों के यहां तक ले जाती है। कभी वह प्रेतात्माओं को बुलाने तथा बात कराने वालों की चौखट तक जा पहुंचता है। चाहे वह स्वयं में कितना बड़ा ज्ञानी क्यों ना हो !

ऋग्वेद के प्रथम ऋषि मधुच्छन्दा के सूक्त, हमने दूसरे खण्ड में रहस्य सहित जाने हैं। जीवात्मा का अमर आत्मा से योग कर क्षीरसागर की अनन्त ऊंचाईयां पाने की तड़प, कुछ ऐसी ही है। विज्ञान ध्वस्त है। जीव फंस गया है। क्यों न आत्मा के संयोग से अपने मूल स्थान तक पहुंच जाये ! एक राह आत्मा की बाकी है। कठिन अवश्य है। परन्तु असम्भव तो नहीं ? लाखों वर्षों तक आवागमन में भटकने से अच्छा है कि आत्मा के संयोग से निकल चलें ! फिर, इसमें बुराई भी क्या है ? कोई नुकसान भी तो नहीं है ? वाहय जीवन भी सुखद वरद हो, मानव

समाज भी धरती का अमृत रहे। अपनी पहचान भी खोये नहीं। मानव अपनी मूल जड़ों से कटे भी नहीं। उसका वाहय जीवन भी सहज, सरल एवं सुखद हो। आत्मा के अमृत का पान करता तथा सबको अमृत पान करवाता, यदि सम्भव हो तो आत्मा के द्वारा राह पा ले ?

• एक सुखद विस्मय !

विश्व विज्ञान के इतिहास ने अभी एक नया मोड़ लिया है। वेद की मान्यताओं को इस नये अनुसंधान ने सही साबित करने की दिशा में सशक्त पहल की है। वे सारे वैज्ञानिक तथा उनके सहयोगी बधाई के पात्र हैं।

एक भारतीय–ब्रिटिश दल ने धूम्रकेतुओं द्वारा जीवन के बीज बोये जाने के चौंकाने वाले प्रमाण जुटाकर जीवों की उत्पत्ति सम्बन्धी मान्यताओं पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। उन्होंने पाया है तथा सिद्ध करने का प्रयास किया है :–

१. २५–४१ किलोमीटर ऊंचाई पर आकाश में जीवित कोशिकाओं का लोंदा। इससे धरती से अन्यत्र भी जीव की उत्पत्ति के संकेत।
२. ये कोशिकायें निरन्तर बड़े पैमाने पर धरती में बरसती रहती हैं।
३. इस तथ्य का पहला सबूत कि जीवों की उत्पत्ति धरती पर नहीं अनन्त आकाश में मायारहित क्षीर सागर में हुई।

अनुसंधान दल :–

१. चंद्रा विक्रमसिंघे: कार्डिफ में शोधरत खगोल वैज्ञानिक। इन्होंने १६७४ में सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि धूम्रकेतुओं में जीवन की मूलभूत इकाई मौजूद है। जीवन का आरम्भ लगभग चार अरब वर्ष पूर्व आकाश से पृथ्वी पर इनके द्वारा ही उतारा गया।
२. सर फ्रेड होएल : एक सम्मानित खगोल विज्ञानी जिन्होंने जीव की उत्पत्ति धरती पर होने की अवधारणा का विरोध किया।

आपने उत्पत्ति के " ब्रह्माण्डीय नियन्त्रण " के सिद्वान्त का प्रतिपादन किया, जो लगभग आदि वैदिक मान्यता से साम्य रखता है।

३. पी. राजारत्नम : भारतीय अनुसंधान संगठन **इसरो** के वैज्ञानिक हैं। इन्होंने संवेदी उपकरण बनाने में मदद की, जिसे एक गुब्बारे के साथ जोड़कर विभिन्न ऊंचाईयों से नमूने लाने के लिये भेजा गया।
४. जयन्त विष्णु नार्लिकर : इन्होंने जीव की उत्पति पृथ्वी से पहले होने की अवधारण पर काम किया।
५. के. कस्तूरीरंगनः इसरो के अध्यक्ष जिन्होंने इस अनुसंधान के लिये इस विश्वास के साथ धन उपलब्ध कराया कि ब्रह्माण्ड के अबूझ रहस्यों का खुलासा हो सके।
६. लायड डेविड : इन्होंने अंतरिक्ष से लिये गये हवा के नमूनों में कोशिका ढूड़ने के लिये मिनरल वाटर में जीवाणुओं को ढूँढ़ निकालने वाली पद्धति का उपयोग किया।

इस खोज ने निर्विवाद रूप से डारविन के सिद्धान्त तथा उससे जुड़ी मान्यताओं एवं अवधारणाओं पर प्रश्नचिन्ह लगा दिये हैं। आदि प्राचीन मान्यताओं को बल मिला है। अभी यह खोज अपने शैशव काल में ही है। बहुत कुछ खोजा जाना बाकी है। डी.एन.ए. की खोज के उपरान्त ही इसे स्थापित किया जा सकेगा।

इस खोज से जीवन के सूत्र खोजने में बल तो मिलेगा ही, साथ ही नाना भ्रम भी मिट सकेंगे। परन्तु जीवन पहेली के समीकरण और सूत्र अनुत्तरित ही रहेंगे। डी.एन.ए. से कोश तथा कोश से शरीर के बनने की बात तो कुछ हद तक ही समझी जा सकती है। शरीर जीव के रहने का जीवन्त घर है। जीव जो जीवन का महत्वपूर्ण सूत्र है, जिसके लिये जीवन्त शरीर रूपी घर बनाया गया है। उस जीव की

उत्पत्ति कब, कहां और कैसे हुई ? अभी बहुत कुछ जानना बाकी है। अभी तो यह निश्चित होना बाकी है कि जीव है अथवा नहीं ? फिर आत्मा भी तो इस समीकरण का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। अभी आत्मा के होने अथवा ना होने की खोज बाकी है। एक बहुत अच्छी शुरूआत का हम सबको अभिनन्दन करना चाहिये। अनन्त युगों से संतप्त धरती पर पहली फुहार पड़ी है। अति सुखद है। जीवन पहेली के तीन अंग आदि वेद ने माने हैं :– आत्मा, जीवात्मा और शरीर।

" ज्योतिर्वेद के विभिन्न सोपान– प्रथम खण्ड " में जीवन के बीजों के अवतरण की चर्चा हमने की है। महाभारत महाकाव्य में भी बीजों द्वारा उत्पत्ति की कथा की चर्चा हमने अति संक्षेप में की है। शिवमहापुराण में भी शिव एवं शक्ति के बीज को अग्नि देव द्वारा प्रवाहित करने तथा छह माताओं (छह ऋतुओं) द्वारा पालकर शिव पुत्र षडानन कार्तिकेय के जन्म की कथा रहस्य में हम इसे यथा समय विस्तार से जानेंगे।

शिव हैं अमर अविनाशी परमेश्वर और अम्बा हैं सचराचर की माता ! अग्निदेव ने निशेचित बीजों को छह ऋतुओं को पालने के लिये सौंप दिया! गगन से उतरती धूम्रकेतुओं की अग्नियों से हर ओर छितराते निशेचित बीजों के विकिरण से ही सम्पूर्ण पर्यावरण तथा उत्पत्ति सम्भव है। क्या इन धार्मिक कथाओं में भी इन गुत्थियों के रहस्य हैं। हमें यथा समय इनपर भी विचार करना होगा। गुरूकुल शिक्षा में इन कथाओं का अति महत्व रहा है। गुरूकुल शिक्षा में इन कथाओं के द्वारा छात्रों को वनस्पतियों एवं पेड़ पौधों को शिव की प्रथमं उत्पत्ति, प्रथम संतान के रूप में दर्शाया जाता था। ये पेड़ ही ब्रह्मचारी कार्तिकेय हैं। ताड़कासुर अर्थात सम्पूर्ण ताड़नाओं का विनाश करने वाले हैं। इनके अनुज श्री गणेश आटे के उबटन से भवानी ने बनाये हैं। मानव तथा अन्न से उत्पन्न सम्पूर्ण जीवधारी आटे के उबटन के ही तो बने हैं। हम सब शिव एवं शक्ति की उपरान्त संतान हैं।

कालान्तर में कथायें भ्रमित होती गयीं। सनातन धर्म में प्रकृति को ही धर्मग्रन्थ मूल पाठ की संज्ञा प्रदान की गयी थी। पेड़ों को अग्रज पूज्य मानकर प्रतिष्ठा करने की भावना आज भी इस धर्म की आत्मा के रूप में व्याप्त है। अतीत के युगों में जब भी धूम्रकेतुओं का उत्पात होता था, समुद्री यात्रायें स्थगित कर दी जाती थीं।

गुरूत्वाकर्षण अर्थात माया और गुरूत्वाकर्षण विहीन आकाश अथवा क्षीरसागर में जीव अथवा पदार्थो के गुण, धर्म अथवा स्वभाव और सिद्धान्त भिन्न भिन्न हो जाते हैं।

गुरूत्वाकर्षण में जीव अथवा पदार्थ जिन परिस्थितियों में विक्षिप्त अथवा विखंडित होते हैं, गुरूत्वाकर्षण विहीन अवस्था में वे सहज एवं अमर होते हैं।

कुछ ऐसे ही बहुत से आदि वेद के सिद्धान्तों एवं मान्यताओं की खोज परख होना बाकी है। ग्रहों की महाप्रलय एवं उत्पत्ति में हमें विस्तार से इन्हें जानना होगा। इसकी चर्चा हम पूर्व में " सनातन दर्शन के नौ अध्याय " नामक ग्रन्थ में कर चुके हैं। इनपर हम पुनः यथासमय विस्तार से विचार करेंगे।

जीवन की उत्पत्ति यहां से लगभग २००० प्रकाशवर्ष दूर अन्तरिक्ष में असंख्य खरब वर्ष पूर्व हुई। ऐसा ज्योतिर्वेद तथा अन्य वेदों का मत है। पृथ्वी पर जीवन का अवतरण कब कब और किसप्रकार हुआ, इसमें नाना मत हो सकते हैं। चार अरब वर्ष पूर्व अथवा इससे भी कहीं अधिक समय पूर्व। बहुत कुछ समय के अन्तरालों में लुप्त हो चुका है। एक लम्बी दासता की त्रासदी में गुरूकुल, ऋषिकुल, अलभ्य ग्रन्थ, वेद एवं स्मृतियां नष्ट हुई, जलायी गई और तापस ऋषि मारे गये। इतिहास साक्षी है। गुलामी की काली अन्धेरी चादर के नीचे बहुत कुछ नष्ट भ्रष्ट और बरबाद होकर रह गया। स्वतन्त्रता के उपरान्त जो बचा

खुचा बाकी है, उसे वोट बैंक की सड़ी गली, उबाऊ, दुर्गन्ध भरी राजनीति ने मिटाने में कसर नहीं छोड़ी। जब सारा विश्व मानवीय मूल्यों पर तथा अन्तर्ब्रह्माण्डीय स्तर पर परिपक्व हो रहा है, भारत के सारे राष्ट्रीय नेता और जिम्मेदार मन्त्री साम्प्रदायिकता, जात–पांत, प्रादेशिकता के वोटबैंकवाद में इस राष्ट्र के मानवीय मूल्यों पर प्रश्नचिन्ह लगा रहे हैं। अब शिक्षा को भी अस्त्र बनाया जा रहा है। पहले शिक्षा का अगवाकरण अल्प संख्यक और बहुसंख्यक की धोखाधड़ी में हुआ। अब भगवाकरण का जवाबी कीर्तन भी शुरू हो गया है, सिर्फ वोटबैंक रिझाने के लिये। अगवा और भगवा के चक्कर में आदि प्रचीन संस्कृति और विज्ञान धुंधलाता नष्ट होता जा रहा है। कुछ उदाहरण दे रहा हूँ।

पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा कर रही है। यह ज्योतिर्वेद का लाखों वर्ष पुराना मान्य सिद्धान्त है। इसी पर संवतसर की परिकल्पना है। जबकि पाश्चात्य विज्ञान तथा क्रिश्चियन चर्च यही मानता आया है कि सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है। यह मान्यता कुछ सौ वर्ष पूर्व तक रही है। अब वे इंसे अपनी उपलब्धि मानते हैं कि उन्होने सिद्ध किया है कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। खोज ज्योतिर्वेद की है, अति प्राचीन है। परन्तु सम्मान कोई और ले रहा है।

ज्योतिर्वेद का आदि प्राचीन सिद्धान्त है कि सौर मण्डल देवलोक की परिक्रमा कर रहा है। उसके समय की गणना भी हमारे पास है। कुछ समंय पूर्व तक पाश्चात्य विज्ञान का अटल मत रहा है कि सूर्य स्थिर है। अब उन्हें अपनी गलती का आभास हुआ और वे भी मानने लगे कि सूर्य सचमुच आकाशगंगाओं की परिक्रमा कर रहा है। यह खोज का सेहरा पुनः उनके सिर बन्ध गया। वेद फिर ठगे गये। पता नहीं भारत कब स्वतन्त्र होगा ?

जीवन क्षीर सागर से पृथ्वी पर उतारा गया था, ना कि धरती पर पैदा हुआ। यह वेद का मत भी शीघ्र पाश्चात्य विज्ञान का सेहरा बनेगा। नेता केवल वोट बैंक की सड़ी राजनीति ही करेगा। क्या आप मानते हैं कि भारत एक स्वतन्त्र स्वाभिमान प्राप्त राष्ट्र है ? लगता है जैसे कोई ढेरों बर्छियों से भीतर तक लहुलुहान किये जाता है।

पहली बार इस अनुसंधान में भारतीय वैज्ञानिकों को अतीत के विज्ञान के हित में, परोक्ष में ही सही, कुछ कर दिखाने का सुअवसर मिला और उन्होंने कर दिखाया। क्या हम अतीत के विज्ञान पर स्वतन्त्र शोध नहीं कर सकते ? भगवाकरण का भय ...... अथवा कोई संकोच ?

क्या राष्ट्र की सत्ता सकारात्मक वोटबैंक की राजनीति से हासिल नहीं हो सकती ? मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करके भी तो सत्ता तक पहुंचा जा सकता है, जिससे राष्ट्र के नागरिक जुड़ें ?

• जीवन का मूल ग्रन्थ - ज्योतिर्वेद !

मैं अनन्त अंतरिक्ष की अनुपम कृति हूँ। मुझे सम्पूर्ण सचराचर ने विधाता के साथ मिलकर बनाया है। अन्तरिक्ष मेरा जन्म स्थान है। अन्तरिक्ष का द्वार मेरे भीतर खुलता है। अन्तरिक्ष निरन्तर झांकता है मुझमें और अन्तरिक्ष सूक्ष्म संक्षिप्त होकर बसता है मुझमें ! मैं एक छोटा अन्तरिक्ष हूँ। सृष्टि का सूक्ष्म चित्र ! **यत पिण्डे! तत् ब्रह्माण्डे !!**

हम गुरूकुल के छात्रों के बीच में हैं। उनकी ही मानसिकता में, इस युग में ज्योतिर्वेद के अनुपम रहस्यमय ज्ञान को धारण कर रहे हैं। बालक ग्रहों की परिक्रमाओं, सौर मण्डल की परिक्रमाओं तथा आकाश गंगाओं के परिभ्रमण के विषय में अनुपम ज्ञान का अर्जन कर रहे हैं। जितनी देर में पृथ्वी सूर्य की एक परिक्रमा को प्राप्त होती है, एक संवतसर गत हो जाता है। पृथ्वी की गति अत्याधिक तीव्र है। शब्द की गति के समकक्ष अथवा उससे भी कहीं अधिक। बालक विस्मित हैं। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा कि वे इतने तीव्रगामी यान पर बैठे हुए हैं। धरती तो यथा स्थान पर स्थिर दिखायी देती है। कोई हिचकोला भी नहीं लगता। फिर भी यह शब्द से तीव्र गति से सूर्य देव की परिक्रमा कर रही है ? आश्चर्य है ?

क्या इसीलिये सनातन धर्म में परिक्रमा का इतना महत्व है। मन्दिर में देवों की परिक्रमा, हवन यज्ञ की परिक्रमा, गुरूजन आचार्यो की परिक्रमा, विवाह में परिक्रमा, मृत देह और चिता की परिक्रमा ? आचार्य उनका अनुमोदन करते हैं। वे उन्हें समझाते हैं कि जीवन ही परिक्रमा का दूसरा नाम है। गर्भस्थ शिशु को भी परिक्रमाओं द्वारा ही जीवन की

प्राप्ती होती है। वे बालकों को बताते हैं कि वे उठते बैठते, सोते जागते निरन्तर पृथ्वी माता के साथ सूर्यदेव की परिक्रमा का पुन्य अर्जित करते हैं।

सूर्यदेव परिवार सहित देवलोक (आकाश गंगा) की निरन्तर परिक्रमा को प्राप्त हैं। उनकी गति पृथ्वी की गति से भी तीव्र है। दृष्टि की गति के समकक्ष। ऐसे त्रयोदश सूर्य परिवार हैं जो देवलोक की परिक्रमा कर रहे हैं। इन्हें ही ज्योतिर्वेद में त्रयोदश रूद्र की संज्ञा प्रदान की गयी है। त्रयोदशी व्रत का रहस्य भी यही है।

ऐसे ही अनन्त देवलोक हैं जिनकी अनन्त सूर्य परिवार परिक्रमा करते हैं। इन सूर्यों की अनन्त ग्रह परिक्रमा करते हैं। इनमें बहुत से ग्रहों पर विभिन्न प्रकार के जीवन हैं। बहुत से ग्रह यज्ञ की अवस्था को प्राप्त हैं।

इन ग्रहों का जीवन पर प्रभाव कैसे पड़ता है ? बालक सहज जिज्ञासा करते हैं। बालकों और शिक्षकों में सम्मानजनक प्रेम के साथ ही सहज खुलापन है। आत्मीयता का भाव स्पष्ट है। बालक निर्भय होकर जिज्ञासा करते हैं। आचार्य उतने ही सहज होकर उन्हें उत्तर देते हैं। छड़ी तो दूर उनके मुखमण्डल पर खीज भी नहीं दिखती। बहुत ही विचित्र सम्मोहक वातावरण है।

आचार्य बालकों को माया (गुरूत्वाकर्षण) और क्षीरसागर (गुरूत्वाकर्षण विहीन) अवस्था के विषय में समझाते हैं। जीवन सचराचर सब दृश्य मात्र खेल माया एवं क्षीरसागर का है। ग्रह की सृष्टि क्षीर सागर में होती है। उसी प्रकार सभी पदार्थों की सृष्टि भी क्षीरसागर में ही होती है। चाहे वह पत्थर का टुकड़ा हो अथवा कोई धातु विशेष। माया में

उन्हें अपने स्थायित्व के लिये संघर्षरत रहना पड़ता है। स्थायित्व का महासमर सभी को लड़ना पड़ता है। पत्थर को भी ? वह तो मृत है ?

" पत्थर को भी ! पत्थर सूक्ष्म ब्रह्म परमाणुओं का बना हुआ है। ये ब्रह्म अमर हैं। माया इन्हें नष्ट करने का असफल प्रयास निरन्तर करती है। ये स्वयं को क्षीरसागर में समाये रहते हैं। जब भी माया इनके क्षीरसागर पर प्रहार करने का प्रयास करती है, ये अमर बिन्दु माया से संघर्ष करते, उन्हें निष्प्रभावी बनाते क्षीरसागर अनन्त की ओर चले जाते हैं। "

" ये ब्रह्म क्या हैं ? "

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का वह सूक्ष्म बिन्दु, जिसके द्वारा सम्पूर्ण सचराचर की संरचना हुई है, उसे ब्रह्म कहते हैं। इन ब्रह्म बिन्दुओं को सृजन करने वाले को ब्रह्मा कहते हैं। चूंकि सम्पूर्ण सचराचर इन्हीं ब्रह्म बिन्दुओं द्वारा निर्मित है, इसलिये ब्रह्माण्ड कहलाता है। परम् ब्रह्म तथा परम् ब्रह्मा, परमात्मा तथा आत्मा की उपाधि हैं। परम् ब्रह्म का अर्थ है, जो ब्रह्म में भी सूक्ष्म होकर समाया हो। परम् ब्रह्मा का अर्थ है जिसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समाकर भी उसे सीमित करने में असमर्थ हो।

ये सूक्ष्म ब्रह्म अमर हैं, अविछिन्न हैं। इन्हें विभाजित करना सम्भव नहीं है। इनमें ब्रह्माण्ड की सर्व शक्तियां निहित है। इन्हीं से जड़ चेतन सचराचर निर्मित होता है। इन्हें आग नहीं जला सकती। किसी शस्त्र से इन्हें काटा नहीं जा सकता। इनका स्वरूप कैसा है ?

क्षीरसागर में इनका स्वरूप अण्डाकार आकृति के समान है। इस आकृति में दो ध्रुव हैं। जिनकी संज्ञा विष्णु तथा लक्ष्मी है। इनके चारों

ओर सूक्ष्म तेज पुञ्ज उसी प्रकार परिक्रमा करते हैं जैसे क्षीरसागर में शेष पर शयन करते विष्णु एवं लक्ष्मी की परिक्रमा एवं वेद का गान करते देव, यक्ष, किन्नर आदि की कल्पना है।

माया अथवा गुरूत्वाकर्षण में इनके रूप निरन्तर बदलते रहते हैं। माया से संघर्षरत रहने के कारण ये यथा रूप लेने में सर्व समर्थ हैं। एक जीवन्त कोश में इनकी संख्या करोड़ों में हो सकती है। इनमें सृष्टि, उत्पत्ति एवं प्रलय की सर्व शक्तियां विद्यमान रहती हैं। इसकी चर्चा वेद में तो है ही श्रीमद्भगवतगीता में भी आयी है। श्रीकृष्ण के अनुसार एक सूक्ष्म ब्रह्म, पृथ्वी जैसे ग्रह की महाप्रलय कर सकता है। वह भी मात्र अकेला !

एक मनुष्य यदि अपने शरीर की ब्रह्मसत्ता का नियन्त्रण एवं संचालन का अधिकार पा सके तो पृथ्वी जैसे ग्रह की महाप्रलय प्रत्येक तीन मिनट में कर सकता है। ऐसा वह लगातार दस वर्ष तक करता रह सकता है। दस वर्ष को तीन मिनट के हिसाब से भाग देकर देख लें ? इतनी बड़ी सत्ता के स्वामी हम सब हैं। यदि हम अपने ही शरीर की सत्ता पर एकाधिकार पा सकें ! इसी सत्ता को पाने की क्रिया को योग कहते हैं। इसका मार्ग यज्ञोपवीत एवं मधुच्छन्दा के ११ सूक्त से होकर जाता है। यज्ञ और योग की तपस्थली तक पहुंचने का मार्ग ज्योतिर्वेद तथा ज्योतिष है। अपनी अनन्त सत्ता को जानने और पाने के लिये ही गुरूकुल में इस महाविज्ञान की अवधारणा रही है। कालान्तर में ज्योतिष अपने मूल विज्ञान ज्योतिर्वेद से कटकर मात्र एक चमत्कारिक विद्या, एक धंधा बनकर रह गया। जिसके कारण इसके अस्तित्व पर भी प्रश्नचिन्ह लगने लगे। पुनः विषय प्रवेश करें !

माया में इनके रूप ताण्डव की मुद्रा में रहते हैं। इनकी संज्ञा, शिव एवं शक्ति, हो जाती है। इस अवस्था में ज्योतिपुञ्ज गण कहलाते हैं। इनकी संज्ञा बदल जाती है।

जब यह सूक्ष्म ब्रह्म अनन्त क्षीरसागर में माया के प्रभाव से नितान्त दूर होते हैं तो इनकी संज्ञा एवं स्वरूप भिन्न होता है। यह परम् शान्त समाधिस्थ रहते हैं। इनके ध्रुव ब्रह्मा तथा सरस्वती के नाम से जाने जाते हैं।

जिसप्रकार एक ही मानव शरीर का भार नाना ग्रहों पर अलग अलग हो जाता है, उन ग्रहों के गुरुत्वाकर्षण के अनुरूप घटता बढ़ता है, क्षीर सागर में शून्य हो जाता है। उसी प्रकार ही सूक्ष्म ब्रह्म बिन्दुओं की अवस्था तथा स्वरूप एवं उनकी संज्ञा को जानना चाहिये।

सूक्ष्म ब्रह्म बिन्दुओं के नर एवं नारी ध्रुव अनन्त शक्ति एवं सत्ता को प्राप्त हैं। माया के प्रभाव को निष्क्रिय करने के लिये योद्धाओं के रूप में अनन्त ज्योतिपुञ्ज उत्पन्न कर सकते हैं तथा माया के हटते ही पुनः अपने में विलीन करने की क्षमता रखते हैं। यही इनकी अमरता का रहस्य है। इन्हीं से सम्पूर्ण सचराचर निर्मित है। इसलिये रूप ही बदलते हैं, ब्रह्म का विनाश नहीं होता। जैसा कि वेद में तथा सनातन धर्म के लगभग सभी ग्रन्थों में, विशेषकर श्रीमद्भगवतगीता में इसकी चर्चा बारम्बार हुई है। इन्हें ही मूल रूप से **तत्व** कहा गया है। इनको जानने वाले को ही **तत्वज्ञ** कहते हैं।

चूंकि सम्पूर्ण सचराचर इन्हीं सूक्ष्म ब्रह्म बिन्दुओं द्वारा निर्मित है, इसलिये इसकी संज्ञा जीवन्त है। जड़, चेतन, सचराचर सभी में जीवन का भाव शाश्वत निहित है। केवल रूप ही बदलते हैं, नष्ट कुछ भी

होता नहीं है। आचार्य उन्हें सहज स्थूल उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करते हैं।

मानव का शरीर आयु के समाप्त होने पर मर जाता है। परिवार के लोग उसे चिताग्नि प्रदान कर उसके शरीर को भस्म में परिणित कर देते हैं। क्या शरीर मर गया ? क्या जीवात्मा मर गया ? अथवा कौन था जो मर गया ? अथवा कहीं ऐसा तो नहीं कि उन सब का रूप बदलकर परिदृश्य में न होने का भ्रम दे गया ? इस बदलाव को ही मृत्यु की संज्ञा प्रदान की हो ?

जीवात्मा अपनी पांचों ज्ञानेद्रियों एवं मन के साथ अगली अवस्था के लिये पलायन कर जाता है। ऐसा श्रीमद्‌भगवतगीता में श्रीकृष्ण का कथन है। शरीर अमर सूक्ष्म बिन्दुओं का बना घर है। वे कदापि नष्ट नहीं होते। स्थूल शरीर भी पुनः थोड़े समय और बदलाव के साथ वनस्पतियों को प्राप्त हो जाता है। वनस्पतियां भोजन बन शरीर में रक्त, मांस, मज्जा आदि में परिणित होती पुनः नवजात शिशु के रूप में प्रकट हो जाती हैं। पुनः तथाकथित जीवन्त हो उठती हैं। फिर वह कौन था जो मर गया था ?

" उसका ज्ञान क्यों लुप्त हो जाता है ? जबकि उसकी ज्ञानेद्रियां और मन उसके साथ हैं ? " बालक जिज्ञासा करते हैं। " ज्ञान का भण्डारण मस्तिष्क में होता है। मस्तिष्क शरीर का अंग है तथा शरीर के साथ ही विसर्जित होकर रूप परिवर्तन को प्राप्त हो जाता है। जीवात्मा के संग से छूट जाने के कारण उसका भण्डार गृह का ज्ञान नष्ट होना स्वाभाविक है। परन्तु जीव का स्वभाव संस्कार जीवात्मा का स्वभाव होने के कारण, जीवात्मा के साथ ही जाता है। इसकी विस्तृत चर्चा हमें श्री कृष्ण के गीता उपदेश में प्राप्त है।

इसी प्रकार सचराचर में ऐसा कुछ भी नहीं है जो नाशवान है। यहां तक कि समय भी नाशवान नहीं है। बूढ़ा व्यक्ति पुनः मरकर बालयोनि पाता समय को पुनः ग्रहण कर लेता है। सनातन सचराचर में सबकुछ परिवर्तनीय है, नाशवान कदापि नहीं है।

ब्रह्म के इसी स्वरूप को बालकों के भोले मन पर छापने के लिये तथा उनके जीवन को आस्थावान बनाने के लिये गुरूकुल ने महाविज्ञान को परोक्ष रूप से अध्यात्म से जोड़ा होगा। क्षीरसागर में ब्रह्म का स्वरूप लक्ष्मी तथा विष्णु के साथ शेषनाग पर शयन करते तथा देव, यक्ष, गन्धर्व उनकी परिक्रमा करते हैं, सूक्ष्म ब्रह्म की सटीक परिभाषा है। ग्रहों, आकाशगंगाओं की परिक्रमा का सुदर्शन चक्र भी उनके ही हाथ में है। परिक्रमाओं को सभी प्रकार की पूजाओं में स्थान देना, परिक्रमा के बिना पूजा का अपूर्ण रहना, मात्र संयोग कदापि नहीं हो सकता। अध्यात्म और सृष्टि विज्ञान को एक ही धरातल प्रदान करने की विलक्षण कल्पना गुरूकुल एवं ज्योतिर्वेद की है। जीवन का अमर सूक्ष्म ब्रह्म भी परिक्रमाओं को प्राप्त है। ज्योतिपुञ्ज निरन्तर सूक्ष्म ब्रह्म की परिक्रमा करते हैं।

प्रलय अथवा संहार माया में ही सम्भव है। यहां ब्रह्म की अवस्था माया के कारण भिन्न हो जाती है। उसका सही एवं सटीक वर्णन गुरूकुल ने शिव और शक्ति के रूप में आस्थाओं के साथ छात्रों को प्रदान किया। चूंकि प्रलय माया में ही सम्भव है, इसलिये शिव का स्थान माया में ही रखा गया। धरती के ऊंचे पर्वत शिखर कैलाश पर उनका वास स्थान हुआ। गुरूत्वाकर्षण अर्थात माया की सीमाओं के भीतर ही। उन्हें तीन शूल का त्रिशूल प्रदान कर, माया से जीवन युद्ध के उद्घोष के रूप में शंख एवं डमरू प्रदान किया गया। यह कोरा संयोग तो कदापि नहीं हो सकता। यहां पुनः महाविज्ञान और अध्यात्म एक ही

धरातल पर एक ही जैसे विद्यमान हैं। कपोल कल्पित कोरी कल्पनाओं का नितान्त अभाव है।

सूक्ष्म ब्रह्म की सहज स्वाभाविक अवस्था को ब्रह्मा तथा सरस्वती देवी के रूप में दर्शाया गया है। यहां पर सूक्ष्म ब्रह्म का सहज स्वाभाविक मनोरम शान्त स्वरूप है। विज्ञान और अध्यात्म का अदभुत मिश्रण यदि आप देखना चाहें तो उस कल्पना का ध्यान करें, जहां विष्णु की नाभिकमल में ब्रह्मा जी कमल पर बैठे हुए हैं। **गर्भ के मायारहित क्षेत्र में ही ब्रह्म सहज हो जीवन की धाराओं में संयोजित होते हैं।** यह दृश्य उसकी ही कल्पना का प्रतीक है।

माया में सूक्ष्मब्रह्म विक्षिप्त विकराल एवं प्रलयंकर हो जाते हैं। अपने अमर अस्तित्व की रक्षा के लिये वे माया से निरन्तर संघर्ष करते रहते हैं। ऐसी अवस्था में उनका जुड़ना सम्भव नहीं है। वे तभी एक नई सृष्टि के लिये जुड़ सकते हैं जब उन्हें मायारहित क्षेत्र अर्थात क्षीरसागर प्राप्त हो। जहां माया निष्प्रभावी हो। कोई शक्ति अथवा सत्ता माया के प्रभाव को हटा रही हो। ऐसा शरीर के भीतर ही सम्भव है। यह शरीर किसी मनुष्य, पशु, पक्षी, जीवधारी अथवा पेड़ वनस्पति आदि का हो सकता है। जहां आत्मिक शक्ति माया को निरस्त्र कर क्षीर सागर अर्थात गुरूत्वाकर्षण विहीन अवस्था का सृजन कर रही हो, वहीं पर नूतन सृष्टि सम्भव है। अण्डज जीवधारियों के अण्डों में भी यही अवस्था उत्पति का मूल है। जल जीवों एवं सरिसृपों में भी यही नियम है।

यह नियम जीवधारी के घर अर्थात शरीर के निर्माण पर ही लागू होता है। जीवात्मा की उत्पति इससे अलग है। शरीर वह घर है जो माया में जीव को सुरक्षित रखने के लिये बनाया गया है। इस घर का माया के बाहर कोई प्रयोजन नहीं रह जाता है। क्षीरसागर में आते ही यह

शरीर माया के संघर्ष से बाहर हो जाता है। जिससे इसकी माया से संघर्ष की प्रक्रिया सहज ही शिथिल एवं शांत हो जाती है। नपुंसकता इसकी प्रथम देन है। उसके उपरान्त वाहय दूरगामी अंग शिथिल एवं निष्क्रिय होने लगते हैं। धीरे धीरे पूरा शरीर निष्क्रिय होकर तैरने लगता है। शरीर की मृत्यु हो जाने के उपरान्त भी जीवात्मा पर कोई प्रभाव नहीं आता। उसकी मृत्यु नहीं होती है। क्षीरसागर में जीवात्मा अनन्त काल तक रह सकती है। वेद के अनुसार क्षीरसागर जीवात्मा का उत्पति स्थल है। यहां वह अनन्त काल तक सहज स्वाभाविक अवस्था में रह सकता है, बिना किसी शरीर के।

मनुष्य का शरीर धरती पर स्वाभाविक रूप से व्यवस्थित होकर रहने के लिये बनाया गया है। वह सागर की गहराईयों में नहीं रह सकता। वहां पर ठहरने के लिये उसे एक और आक्सीजन के खोल की जरूरत होगी, अन्यथा घुटकर मर जावेगा। जल में रहने के लिये उसका शरीर नहीं बनाया गया है। ठीक इसी प्रकार माया में जीवात्मा के लिये यह शरीर जल और आक्सीजन, **हाइड्रो-आक्सीजन बेस्ड** घर की कल्पना की गयी। शरीर जीवन को संरक्षित करने वाला ज़ीवन्त घर है।

इसी प्रकार जल में रहने वाले शरीर की कल्पनाओं को भी जलीय जीवन के हित में साकार किया गया। इनके शरीर जल में रहकर ही सुविधापूर्वक माया से जीवन की रक्षा यथा समय तक कर सकते हैं। जल के बाहर इनकी अवस्था अस्वाभविक हो उठती है।

इसी प्रकार कुछ ऐसे शरीरों की कल्पना हम देखते हैं जो जल और थल पर लम्बे समय तक स्वस्थ रूप से रह सकते हैं। ऐसे ही शरीरों जैसी कल्पना हमें आदि ग्रन्थों में यक्ष, गन्धर्व आदि के रूप में मिलती है, जो जीवन के अवतरण के आरम्भिक काल में क्षीरसागर से धरा

तक विचरण करते थे ? जीवन को धरा पर व्यवस्थित करने में इनका विशेष योगदान रहा है।

डारविन की मान्यता, कि धरती का जीवन जल में डूब जाने के कारण जलीय हो गया अथवा इसके विपरीत जलीय जीवन धरती पर आकर जलीय अवस्थाओं को खो बैठा, किसी भी प्रकार से समझ में आने वाली बात नहीं लगती। यहां तक कि डी.एन.ए के सिद्धान्त के भी कतई विपरीत है। अंगों और अवयवों के लम्बे विकास की कथा पढ़ने सुनने में तो काफी अच्छी लगती है। परन्तु वैज्ञानिक सिद्धान्तों की कसौटी पर, सिद्धान्तों एवं मान्य पटरियों को ही उलट कर रख देती है। डिस्कवरी चैनल पर इस तरह की कल्पनायें अक्सर देखने को मिल जाती हैं। इनका विज्ञान के किसी मान्य स्कूल से कोई सम्बन्ध नहीं है।

माया में जीवन का सृजन क्यों सम्भव नहीं है ? इसका मूल कारण क्या है ?

सूक्ष्म ब्रह्म ! जी हां ! सूक्ष्मब्रह्म ही सृष्टि का मूल हैं। सहज स्वाभाविक अवस्था में यह जुड़कर सृष्टि को धारण करते हैं। क्षीरसागर ही इनकी सहज स्वाभाविक अवस्था है। इसी अवस्था में इनका जुड़ाव पदार्थ में सम्भव है। माया में ये संघर्षरत होने के कारण विध्वंसक हो उठते हैं। ऐसी अवस्था में प्रलय तो सम्भव है, परन्तु सृष्टि की कल्पना भी नहीं हो सकती। क्षीरसागर ही इनकी अमरता का रहस्य है। जुड़ते समय भी सूक्ष्म ब्रह्म अणुओं में क्षीरसागर अनिवार्य रूप से विद्यमान रहता है। आप ऐसा भी कह सकते हैं कि दो अथवा अनेक ब्रह्म बिन्दुओं को जोड़ने का कार्य क्षीरसागर ही करता है। क्षीरसागर की अवस्था के हटते ही पदार्थ में व्याप्त सूक्ष्मब्रह्म, छिटक कर अलग होते क्षीरसागर की ओर तीव्र गति से भागने लगते हैं। पदार्थ का क्षरण होने लगता

है। इससे भी स्पष्ट होता है कि सूक्ष्मब्रह्म का जुड़ाव **क्षीरसागर** ही है। माया इनका विघटन एवं बिखराव है।

क्षीरसागर **स्पेस** और माया **ग्रेविटी** के ताने बाने बुनते सम्पूर्ण सचराचर को सूक्ष्मब्रह्म बिन्दुओं से नाना रूपों में निरन्तर बुनते रहते हैं। ग्रह, ब्रह्माण्ड, जल, जीवन, सचराचर, सबकुछ ! प्रलय और उत्पति का यह खेल निरन्तर चलता रहता है। गुरूकुल शिक्षा इस महाविज्ञान को अमर आत्मा एवं धर्म के साथ समायोजित करके आस्था के साथ बान्धकर अमर करना चाहती है, जिससे धरती का मानव अपने होने के रहस्यों से अनभिज्ञ न रहे। समय की तेज रफ्तार में कहीं अपने को गंवा न बैठे। आस्था पूर्वक अपने गन्तव्य की ओर बढ़ता रहे।

माया अनेक प्रकार के खेल करती है। माया ही भविष्य लिखती और मिटाती है। माया स्वयं में एक नहीं, अनेक है। पृथ्वी की माया, सूर्य की माया, नाना ग्रहों की माया, नाना नक्षत्रों की माया, जीवन और मृत्यु के खेल खेलती माया, जातक को जन्मती और भविष्य के लेख बनाती माया, ज्योतिर्वेद में ज्योतिष शास्त्र की जननी माया ही बन जाती है। बालक इसी विज्ञान को विस्तार से गुरूकुल में पढ़ रहे हैं। यह विषय प्रत्येक छात्र के लिये अनिवार्य है।

बालक खुले आकाश में ग्रहों और नक्षत्रों को पहचानने का ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं। ग्रहों और नक्षत्रों द्वारा समय एवं दिशा का ज्ञान आदि नाना प्रकार के व्यवहारिक ज्ञान से वे पारंगत हो रहे हैं। तिथियों, वार एवं मास का ज्ञान, शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष को जानने की कला वे आचार्यो से सीख रहे हैं। शून्य तथा दशमलव की प्रणाली भी उन्होंने ज्योतिष शास्त्र में सीखी है।

• ग्रहों एवं नक्षत्रों के प्रभाव

गुरूकुल के निर्मल वातावरण में बालक ज्योतिर्वेद के संग ही ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन कर रहे हैं। ग्रह नक्षत्र और सितारे दूर आकाश से उनके जीवन में प्रभाव ही नहीं रखते, वरन उन पर कृपा और प्रभाव के साथ उन्हें दिशा निर्देश भी प्रदान करते हैं।

कोई भी समय अच्छा अथवा बुरा नहीं होता। समय का सामयिक उपयोग ही उसे अच्छा अथवा बुरा बनाकर रख देता है। जो समय भौतिक दृष्टि से हानिकर है, वही समय आध्यात्मिक दृष्टि से अमृत तुल्य भी हो सकता है। ज्योतिष समय के सूक्ष्म ज्ञान को पढ़ने नापने की विद्या है।

कर्मयोगी भाग्य का लिखा बदल सकता है। इसे कभी भी नहीं भूलना चाहिये। सावित्री अपने पति सत्यवान की मृत्यु को बदलकर रख देती है। अल्प मृत्यु को जाने वाला मार्कण्डेय अमर हो जाता है। चूंकि कर्मयोगी भाग्य का लिखा बदल सकता है, इसीलिये ज्योतिष की व्यवहारिक महत्ता बहुत अधिक है। समय एवं काल को पढ़ समझ कर व्यवहार करने की कला का नाम ज्योतिष है। इसीलिये गुरूकुल में इस विज्ञान को प्रत्येक छात्र के लिये अनिवार्य बनाया गया है। जीवन के सूक्ष्म रहस्यों को जानकर सुघड़ जीवन को सुखपूर्वक जीना तथा जीवन लक्ष्य की ओर सुखपूर्वक सभी दायित्वों का निर्वाह करते प्राप्त हो जाना।

कर्मयोग और आसक्त कर्म को भी भली प्रकार समझ लेना चाहिये। इसे आप सचराचर में मनुष्य योनि के अतिरिक्त भली प्रकार जान सकते हैं। आपके घर में गाय है। उसके बछड़े होते हैं। आप उसे किसी को

दान कर देते हैं। गाय की पूर्ण अनासक्त भक्ति एवं आस्था मालिक में है। गाय न तो विरोध करती है और ना ही मालिक से झगड़ा ही करती है। यदि आपका मालिक आपके बेटे को किसी को दान कर देता तो ? आप उसे कितनी गालियां और गोलियां मारते ? आसक्ति आपके जीवन को नर्क बना कर रख देती ? आपकी आस्था, भगवान, सब मर जाते ? गाय और सम्पूर्ण प्रकृति अनासक्त भाव में जीती है। मनुष्य केवल आसक्त भाव एवं कर्म में ही जीता है। इसीलिये भाग्य बदलना तो दूर, भाग्य के हाथों कठपुतली भर बनकर रह जाता है। इसीलिये जीवन पर्यन्त भारी कर्म दण्ड पाता रहता है। कर्मयोगी ही भाग्य बदलता है।

एक प्रेस कान्फ्रेंस में एक प्रश्न कर्ता ने इस सन्यासी पर आक्षेप किया, " स्वामी जी आप तो पलायनवादी हैं। भगोड़े हैं। आप क्या कर्मयोग पढ़ायेंगे !" सम्भवतः वे पेशे से वकील थे। उनका दम्भ स्पष्ट झलक रहा था कि वे स्वयं को कर्मयोग का विशिष्ट प्रख्याता मानने की भारी भूल कर रहे थे। कहने लगे " कर्मयोगी तो हम हैं। संसार समाज को छोड़कर भागे नहीं हैं।"

" आप सम्भवतः ठीक ही कह रहे हैं। एक बीबी और दो बच्चों के लिये हर मुवक्किल को नोचने वाले आप तो हो गये कर्मयोगी। सचराचर को आत्मा का बनाया मानकर, सचराचर की आत्म भाव से इच्छारहित होकर सेवा करने वाला यह सन्यासी भगोड़ा हो गया। आपने अवश्य इस कर्मयोग को दुर्योधन और मामा शकुनि के श्रीमुख से सुना होगा। श्रीकृष्ण और अर्जुन के मध्य हुई श्रीमद्‌भगवतगीता भी पढ़ लीजियेगा। अनासक्त कर्मयोग और आसक्त कर्म का भेद, शायद आपको स्पष्ट हो जाये।"

ऐसा बहुत बार होता है। हम सत्य के विलोम को ही सत्य मान बैठते हैं। दम्भ, गांधारी की आंखों की पट्टी की भांति हमारी समझ की आंखों पर पट्टी बनकर हमें अंधे से भी अधिक अंधा बना देता है। अनासक्त कर्म को ही कर्म कहा गया है। आसक्त कर्म को पाप की संज्ञा प्रदान की गयी है। उसे कर्म की श्रेणी से अलग रखा गया है। इसीलिये जब कहूं कि कर्मयोगी भाग्य बदलता है तो उसे यथा लीजियेगा। कर्मयोगी और कर्म भोगी के भेद को समझते हुए। ज्योतिष एक सूक्ष्म महाविज्ञान है। इसको समझने के लिये नीर–क्षीर–विवेक की परमावश्यकता है। इस विवेक के पाने के लिये ऐसे ही निर्मल चरित्र का होना भी परमावश्यक है।

जीवन, पृथ्वी तथा नाना ग्रहों के गुरूत्वाकर्षण सन्तुलन पर पूरी तरह से आश्रित है। एक भी ग्रह की कक्षा अथवा स्थान में परिवर्तन, सम्पूर्ण पृथ्वी जीवन में भारी उलट फेर कर सकता है। तब मनुष्य और उसका भाग्य किस प्रकार अछूते रह सकते हैं ? अन्तरिक्ष के बाहर ही नहीं, हमारे भीतरतम स्थानों को भी अपने प्रभाव में रखता है। हम इनके प्रभाव से किस प्रकार बच सकते हैं। बालक ऋषियों के अनुभूत ज्ञान से वरद होंगे। वे ग्रहों के प्रभाव को ज्योतिष में पढ़ेंगे।

नौ ग्रह हैं और सत्ताईस नक्षत्र। प्रत्येक नक्षत्र के चार चरण हैं। बारह राशियां हैं। यह सब ग्रहों को सुगमतापूर्वक, सटीक ढंग से नापने के लिये ग्रहण किये गये हैं। नक्षत्र का महत्व दो कारणों से विशेष है। प्रथम, पृष्ठ आकाश को अंकित किये बिना ग्रहों की अवस्था का सही भान होना सहज कदापि नहीं है। कौन सा ग्रह किस राशि में है, इसे आप नक्षत्र तथा नक्षत्र चरण के द्वारा ही ज्ञात कर सकते हैं। इसके बिना ज्योतिष अति दुरूह हो जायेगा। नक्षत्रों को स्पष्ट किये बिना राशियों की पहचान अति दुर्लभ हो जायेगी।

दूसरा कारण है, इन नक्षत्रों का जीवन पर पढ़ने वाला अदृश्य प्रभाव। यह प्रभाव सदा एक सा रहता हो, ऐसा भी नहीं है। नक्षत्रों का विज्ञान ग्रहों के ज्ञान से कहीं अधिक दुरूह है। समय के साथ इसके प्रभाव आश्चर्यजनक ढंग से बदलते रहते हैं। युगों के अन्तरालों में इनके प्रभावों में भारी फेर बदल होता है। इनके प्रभाव निर्णायक और असर करते हैं। इनका सीधा प्रभाव यथा ग्रह पर आता है। ग्रह का स्वभाव और गुण में भारी अन्तर आ जाता है।

सत्ययुग में सौर परिवार, नक्षत्रों के काफी समीप होता है। उस समय के मान्य ज्योतिष में तथा आधुनिक ज्योतिष में वही साम्य, सिद्धान्त खोजना भारी भूल होगी। आकाशगंगायें अपने परिक्रमा पथ पर निरन्तर अग्रसर रहती हैं। उसी प्रकार सौर परिवार अपने परिक्रमा पथ पर अग्रसर रहता है। इससे इनकी दूरी का अनुपात सदा एकसा रह ही नहीं सकता। इसमें बदलाव होना अवश्यम्भावी है। नक्षत्र विद्या निरन्तर शोध का विषय है। इनके प्रभावों को भी समय के साथ इनके बदलाव सहित जाने बिना ज्योतिष विज्ञान अपूर्ण ही रहेगा।

सूर्य का प्रभाव सदा एकसा रहे, ऐसा सम्भव नहीं है। जब सूर्य अश्विनी नक्षत्र के चरणों में विचरण कर रहा होगा तो उसके स्वभाव में क्रूरता का भाव अधिक होगा। यह नक्षत्र समूह अशान्त तथा उल्काओं धूम्रकेतुओं का भीषण क्षेत्र है। इसीलिये इसे केतु ग्रह का घर तथा मूल नक्षत्रों में एक होने की संज्ञा प्रदान की गयी है। कुण्डली में भी जातक पर यथा प्रभाव लिया जायेगा। परन्तु जब सूर्य इसी राशि में भरणी नक्षत्र समूहों में विचरण कर रहा होगा तो उस पर सौम्य प्रभाव होगा। इसका प्रभाव यथा जातक पर भी होगा। इसी प्रकार ग्रहों के प्रभाव को जानना चाहिये। ग्रह स्वयं में तो प्रभाव रखता ही है। परन्तु अपने से भी कहीं अत्याधिक भारी प्रभाव यथा नक्षत्र समूहों का

होता है। जिससे ग्रह का स्वभाव, गुण, धर्म तक बदल ही नहीं, पूर्ण रूपेण विपरीत हो जाते हैं।

इसप्रकार २७ नक्षत्रों के कुल १०८ चरण एक ही सूर्य को १०८ प्रकार के प्रभाव, स्वरूप, स्वभाव तथा प्रकृति का भान कराते हैं। जन्म के समय का सूर्य उसके आत्मगत संस्कार का प्रतीक बन जाता है। सूर्य जगत आत्मा है। जातक का आत्म भाव भी सूर्य ही है। केवल १२ राशियों में राशियों में ही तमाम दुनियां का भविष्य फल लिखने जैसी कल्पना यहां पर नहीं है।

इसी प्रकार चन्द्रमा को भी जानना चाहिये। चन्द्रमा मन का जनक तथा अमात्य कारक ग्रह है। यह अति सौम्य तथा महाक्रूर हो सकता है। नक्षत्रों के प्रभाव के अनुसार ही इसका फल जानना चाहिये। जातक की संकल्प शक्ति का बोध भी चन्द्रमा से ही लिया जाता है। एक चन्द्रमा के १०८ विपरीत स्वभाव होते हैं।

बुध ग्रह जातक की बुद्धिबल का प्रतीक है। जातक के जीवन में होने वाली ज्योतिर्मय उपलब्धियों का भान तथा उसकी चेष्ठा का विचार बुध ग्रह से लिया जाता है। इसके प्रभाव भी यथा नक्षत्र चरण के साथ बदल जाते हैं।

मंगल ग्रह को सदा क्रूर मानना सही नहीं है। मंगल आपके जीवन में मंगल शान्ति एवं तप का जनक भी हो सकता है। बृहस्पति ग्रह अध्यात्मिक उत्थान का ग्रह है। परन्तु इसके प्रभाव भी नक्षत्र चरण के अनुरूप बदलते रहते हैं। शुक्र ग्रह का विशेष प्रभाव जातक के भौतिक द्वैत धर्म अर्थात सामाजिक जीवन पर पड़ता है। उसका जगत व्यवहार कैसा होगा। शनि ग्रह बालक के जीवन के स्थायित्व का परिचायक है। राहु उसके आसक्त जीवन की उपलब्धियां तथा केतु उसके चरित्र

में व्याप्त अवसरवादिता और लक्ष्य पूर्ति हेतु किस हद तक साधनों का प्रयोग अथवा दुरूपयोग कर सकता है, इसका परिचायक है। इन ग्रहों के सम्मिलित प्रभाव को नक्षत्रों सहित ग्रहण करके ज्योतिषी जातक का भविष्य फल जन्म के समय सुनाता है। इस प्रकार १२ राशियों को ९ ग्रहों से गुणा किया तो योग १०८ स्थूल योग हुआ। इस १०८ को नक्षत्रों के १०८ चरणों से गुणा करने से ११ हजार ६६४ स्थूल योग बनते हैं। स्थूल ज्योतिष के लिये विश्व मानव को इतने विभागों में बान्टकर ही साधारण भविष्य फल की कल्पना की जा सकती है। सूक्ष्म ज्योतिष के योग तो अनन्त हैं।

बालक ज्योतिष ज्ञान को आत्मस्थ करते हैं। अभी उन्हें इस महाविज्ञान को भोजपत्रों के सहयोग से स्मृति में धारण करना होगा। नक्षत्रों को पहचानना, यथा ग्रहों की गगन में अवस्था का भान लेना आदि व्यवहारिक नाना ज्ञान को प्राप्त होना होगा।

आचार्य ज्योतिष विज्ञान को पढ़ाते समय उन्हें उनके अतीत तथा अतीत युगों का परिचय भी कराते रहते हैं। बालक जिज्ञासा करते हैं कि धरती का मानव किस प्रकार इन ग्रहों के प्रभाव को जानता है ? वे उन्हें अतीत के युगों की मानव के धरा पर अवतरण की कथा सुनाते हैं। देवयानों द्वारा मानव की नाना ग्रहों पर जीवन अवतरण की कथा सुनाते हैं। जीवन की उत्पति पर माया के प्रभाव के रहस्य स्पष्ट कर समझाते हैं। प्रत्येक बार उनकी कथा प्रलय की कहानी पर आकर बोझिल हो जाती है। सबकुछ तो जल में समा गया था। एक ग्रह की एक ही धरती, किस प्रकार नाना द्वीपों में जल द्वारा बान्ट दी गयी। किस प्रकार सारी उपलब्धियां मानव सहित महाविनाश की गोद में सिमटकर रह गयीं। बस कुछ बचे हुए लोग ही पर्वतों की चोटियों पर रह गये थे।

यह सब ऐसे समय हुआ, जब सौर मन्डल अपनी स्वाभाविक यात्रा में आकाशगंगाओं से दूर जा रहा था। आकाशगंगायें भी विपरीत दिशा में नियमानुसार जा रही थीं। कुछ मदद भी नहीं हो सकती थी। संवादहीनता की अवस्था ने खोज की सम्भावना को भी ध्वस्त कर दिया था। गुरूकुल की तड़प है कि धरती का मानव सत्ययुग पर्यन्त इस कथा को जीवित रखे। जब सौर मन्डल और आकाश गंगायें फिर समीप होंगी, आवागमन सुलभ होगा, तो वे बता पावेंगे कि मानव विपरीत अवस्था में भी स्मृतियों के साथ इतने युग विज्ञान के अभाव में जी आया है। वह बैठा नहीं रहा। उसने हार नहीं मानी। विज्ञान को पुनः अर्जित करने में लगा रहा। वह जीया है, भयावह परिस्थितियों में भी। उसने प्रकृति से हार नहीं मानी है।

वेद और विज्ञान की धाराओं के लुप्त होने के उपरान्त भी, उसने अपनी स्मृति के आधार पर वेद प्रकट किये। ज्ञान और विज्ञान को आगे बढ़ाता रहा है। ज्योतिष भी उसी विज्ञान का बचा खुचा स्वरूप है। अपने होने का अहसास भर ! मानव पीढ़ियां, युग युगान्तर तक, इस अतीत को, अपने वर्तमान और भविष्य को सुनाती रहेंगी। इसे सत्ययुग तक मिटने नहीं देंगी। जब मिलेंगे पुनः, तो नितान्त अजनवी तो नहीं होंगे।

भरतखण्ड और महान भारत जाति का दुर्भाग्य कि उसे गुलामी की अन्धी अमानवीय चादर के नीचे सिमटना पड़ा। गुरूकुल, ऋषि, तपस्वी सब नष्ट कर दिये गये। जब देश आजाद हुआ तो भारत की मूल संस्कृति फिर गुलाम घोषित कर दी गयी, धर्मनिर्पेक्षता की आड़ में। अल्पसंख्यकों को अपने स्कूलों में अपने धर्मग्रन्थ पढ़ाने का मौलिक अधिकार है। परन्तु बहुसंख्यक ऐसा कदापि नहीं कर सकते। भारत का संविधान उन्हें वेद का विज्ञान पढ़ाने की अनुमति नहीं देता। आप

शिक्षा का अगवाकरण तो कर सकते हैं, परन्तु भगवाकरण कैसे हो सकता है ?

छात्र कुण्डली बनाने का गणित सीख रहे हैं। आकाश से भी अब अपरिचित नहीं हैं वे। अब तो आकाश उनमें बसने लगा है। उच्च और नीच ग्रहों के भावों का भी उन्हें ज्ञान हो रहा है। सूर्य मेष राशि में उच्च तथा तुला राशि में नीच भाव में चला जाता है। इसी प्रकार चन्द्रमा वृष राशि में उच्च तथा वृश्चिक राशि में नीच भाव में आता है। मंगल मकर राशि में उच्च तथा कर्क राशि में नीच भाव में चला जाता है। बुध कन्या राशि में उच्च तथा मीन राशि में नीच भाव में चला जाता है। बृहस्पति कर्क राशि में उच्च तथा मकर राशि में नीच भाव में चला जाता है। शुक्र मीनराशि में उच्च तथा कन्या राशि में नीच भाव में हो जाता है। राहु मिथुन राशि में उच्च तथा धनु राशि में नीच भाव में चला जाता है। केतु धनु में उच्च तथा मिथुन राशि में नीच भाव में हो जाते हैं। शनि तुला राशि में उच्च तथा मेष राशि में नीच भाव में चला जाता है। ये ग्रह उन राशियों में सदा उच्च अथवा नीच रहते हों, ऐसा कदापि नहीं है। अंशों के आधार पर ही ऐसा होता है। इसके अलावा यथा राशियों में रहते हुए भी उनके नीच भंग योग बन सकते हैं। बालक इन्हें विस्तार से ग्रहण करते हैं।

शिशु का स्वरूप माता के गर्भ में सृजन यज्ञ के द्वारा यथा समय पूर्ण होता है। गर्भ की अवस्था क्षीरसागर के समान है। मांता की देह की आत्मिक शक्ति, शरीर की ऊर्जा के सहयोग से, भौतिक मायाओं को निरन्तर नष्ट करती, गर्भ के क्षीरसागर को अक्षुण्य रखती है। जिससे शिशु खण्डित न हो जाये। यज्ञ के द्वारा उसका निर्माण होता रहे। यदि माया का प्रवेश हो गया तो यज्ञ का विध्वंस हो जायेगा। शिशु की गर्भ में ही मृत्यु हो जावेगी।

शिशु के जन्मते ही उसके शरीर का ग्रहों की मायाओं से सामना होता है। शिशु की आत्मिक शक्ति मायाओं के महासमर से जूझने लगती है। यही जीवन का आरम्भ है। पृथ्वी सहित, सूर्य चन्द्र आदि ग्रहों की मायाओं के प्रभाव को निरस्त्र करते, जीवन के महाभारत का आरम्भ ही जीवन है। माया जीतेगी तो नवजात शिशु की मृत्यु हो जावेगी। आत्मा श्रीकृष्ण ही उसके जीवन रथ के सारथि हैं। शरीर को संस्कृत में रथ भी कहते हैं। जीवात्मा महारथी अर्जुन हैं। एक महासमर, जिसे प्रत्येक जीवन को माया में स्थायित्व के लिये अहर्निश लड़ना पड़ता है। जब युद्ध में थक जाता है, तब मृत्यु उसे अपनी गोद में समेट लेती है।

जन्म समय का वही क्षण ज्योतिष में अति महत्वपूर्ण है। क्षीरसागर के मायारहित क्षेत्र से जब जीव की देह का माया में प्रवेश हुआ, तो उस क्षण माया का प्रथम प्रहार किस प्रकार हुआ ? ग्रहों की अवस्था एवं स्थिति कैसी थी ? लग्न कहां पर था ? सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरू, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु की स्थिति क्या थी ? किन किन अंशों पर ग्रह पृथ्वी की माया को संतुलित कर रहे थे ?

इसे एक उदाहरण से स्पष्ट करना चाहुंगा। यदि सभी ग्रहों के माया प्रभाव से पृथ्वी को मुक्त कर दिया जाये तो जीवन पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा ? ८ पौण्ड का शिशु ८ टन भार का होकर सहज ही मर जावेगा। जीवन इन्हीं मायाओं के सन्तुलित व्यवहार की देन है। इसलिये पूजा आदि में इन ग्रहों की देवताओं के समान ही पूजा के विधान किये गये हैं। जीवन, सौभाग्य सब पर इन ग्रहों की कृपा है।

मंगल ग्रह पर जीवन उतारने की कल्पना हम सबको रोमांचित करने लगी है। क्या हम मंगल ग्रह पर जीवन को स्थापित कर पायेंगे ? उसके लिये हमें क्या क्या करना पड़ सकता है ?

१. सर्व प्रथम उसकी माया के प्रभाव को जानना तथा जीवन के अनुकूल बनाना होगा।
२. ग्रह को जीवन्त करने के लिये पर्यावरण की सृष्टि करनी होगी। ओज़ोन लेवल को प्रकट करना होगा। जल की व्यापक उत्पति करनी होगी।
३. निशेचित बीजों के द्वारा सम्पूर्ण ग्रह मंडल पर छिड़काव करना पड़ेगा। शिव एवं शक्ति की कथा को दुहराना पड़ेगा। जल एवं थल पर जीवन को इन्हीं बीजों की सहायता से जीवन्त करना होगा।
४. पशुओं एवं पक्षियों को मंगल ग्रह पर बसाना होगा। उन्हें सहज स्वाभाविक परिस्थितियों के अनुरूप बनाना होगा। जल एवं आक्सीज़न की सुचारू एवं व्यापक व्यवस्था को सुनिश्चित करना होगा।
५. इन सारी व्यवस्थाओं के हित में एक चन्द्रमा जैसे ग्रह को मंगल की कक्षा में लाकर स्थापित करना होगा।
६. जीवन को क्षीरसागर से अप्रभावित रूप से मंगल ग्रह तक ले जाने की प्रणाली विकसित करनी होगी। यदि जीवन पर थोड़ा सा भी प्रभाव आ गया तो जीवन आगे उत्पति के योग्य नहीं रहेगा। नपुंसकता जैसी समस्यायें उत्पन्न हो सकती हैं। विकलांगता से मृत्यु तक कुछ भी हो सकता है।
७. मंगल ग्रह की कक्षा भिन्न है। सात वर्ष के अन्तराल के उपरान्त थोड़े समय के लिये ही पृथ्वी और मंगल ग्रह समीप होते हैं। इसलिये निर्बाध यात्राओं के लिये प्रणाली सुनिश्चित करनी होगी। अन्यथा जरूरत के समय उन्हें सहायता दे पाना भी सम्भव नहीं होगा।

ऐसी ही बहुत सी परिस्थिति जन्य समस्याओं से विज्ञान को जूझना पड़ सकता है। यदि सबकुछ ऐसा ही है, तो सोचिये जिन्होंने आकाश

गंगाओं के पार पृथ्वी पर जीवन उतारा था, उन्हें क्या कुछ नहीं झेलना पड़ा होगा ? धरती का जीवन क्योंकर उन्हें देवतुल्य नहीं भजेगा ? कैसे उनका ऋणी नहीं होगा ? एक समीपस्थ लगभग एक ही जैसी माया में विचरण कर रहे ग्रह पर जीवन उतारने मे हमें इतने इतने पापड़ बेलने पड़ेंगे। आकाशगंगाओं के पार जीवन की कल्पना...! स्तुत्य है ! वन्दनीय है !

शिशु के जन्म के उस क्षण को हम ज्योतिष में इष्टकाल कहते हैं। इष्ट का अर्थ आप **इच्छित** समय, ऐसा भी ले सकते हैं। सूर्योदय से जन्म समय के समय को ही इष्टकाल कहते हैं। इसे ज्योतिषी यथा स्थान अक्षांश एवं रेखांश शास्त्रीय समयानुसार शुद्ध करके जन्म कुण्डली बनाता है। जन्म कुण्डली में १२ खाने अथवा घर बने रहते हैं। इनकी संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है :–

१. लग्न, निज, स्व, तनु, तथा इस घर की राशि के स्वामी को लग्नेश कहते हैं।
२. धन, कुटुम्ब, नेत्र, द्वितीय भाव, तथा इसकी राशि के स्वामी को द्वितीयेश कहते हैं।
३. पराक्रम, अनुज, आयु, भृत्य, इस घर के स्वामी को पराक्रमेश कहते हैं।
४. माता, सामाजिक प्रतिष्ठा, अचल सम्पति, वक्ष स्थल, चतुर्थेश इसके स्वामी की संज्ञा है।
५. विद्या, पितामह, कमर के हिस्से, गुर्दे, संतान, पंचम भाव से जाने जाते हैं।
६. रोग, मातामह, मामा, आदि नानाविचार षष्ठ भाव के द्वारा ज्ञात होते हैं।
७. यह घर पत्नी अथवा पति का भाव माना जाता है। रोज़ाना आमदनी, गुप्तांग सम्बन्धी विचार सप्तम भाव तथा इसके स्वामी से करते हैं। इसे मारकेश तथा मारक भाव कहते हैं।

८. मृत्यु, गुप्त शत्रु, गुप्त धन आदि का विचार अष्टमेश तथा अष्टम भाव से करते हैं।
९. भाग्य भवन है यह। धर्म, कर्म, सौभाग्य आदि का विचार नवम भाव तथा नवमेश से करते हैं।
१०. पिता, राज्य, नौकरी अथवा व्यवसाय का ज्ञान आदि दशम भाव तथा दशमेश से करते हैं।
११. लाभ, अग्रज, इस घर के स्वामी को लाभेश कहते हैं।
१२. व्यय भाव तथा इस भाव के स्वामी को व्ययेश कहते हैं।

जन्म समय में ज्योतिषी कुण्डली के इन्हीं भावों पर विचार करता है। लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम तथा द्वादश भावों में किसी में भी मंगल हो तो जातक को मंगली घोषित करने की प्रथा है। इस पर भी ज्योतिषी विचार करता है।

जन्म समय में मूल तो नहीं है ? ज्योतिषी इस पर भी विशेष रूप से विचार करता है। जन्म समय में चन्द्रमा यदि अश्विनी, मघा अथवा मूला नक्षत्रं में तो गण्ड मूल होता है। इनका प्रभाव शुभ नहीं मानते हैं। इसकी पूजा लगभग २७ वें दिन पुनः उसी नक्षत्र में चन्द्रमा के होने पर विद्वान आचार्य से करवायी जाती है। उपरोक्त तीनों नक्षत्र केतु के माने जाते हैं। इसी प्रकार जब चन्द्रमा आश्लेषा, ज्येष्ठा अथवा रेवती नक्षत्र में जन्म समय में हो तो सर्प मूल होता है। इसकी पूजा का विधान भी उसी प्रकार है। ये तीनों नक्षत्र बुध से प्रभावित माने जाते हैं। फिर भी इन्हें बच्चे और उसके भविष्य तथा माता अथवा पिता पर भारी माना जाता है। निर्णय नक्षत्र के चरण के अनुसार होता है।

जिस राशि, चरण में चन्द्रमा होता है, उसी के अंश, कला, विकला के अनुरूप ज्योतिषी योगिनी दशायें तथा पराशर विंशोत्तरी महादशाओं की

स्थापना करता है। जिससे शिशु के आगामी जीवन में घटने वाले घटना क्रम की समीक्षा कर सके। कहीं कहीं पर, कालान्तर में अष्टोत्तरी महादशाओं का चलन भी हुआ। यह काफी उपरान्त काल का विषय है। इन महादशाओं की कल्पना जो पाराशर ने की है, उसे संक्षेप में बताते हैं।

हम उस शिशु की आदि कल्पना करते हैं, जिसने प्रथम बार सृष्टि में जन्म धारण किया होगा। यहीं से महादशाओं की कल्पना का श्रीगणेश है। सर्वप्रथम शिशु सूर्य सा सुन्दर, मोहक, निर्मल एवं पवित्र शान्त मन का होता है। इसलिये प्रथम महादशा ६ वर्ष की सूर्य की रखी गयी। उसके उपरान्त उसमें मन की चंचलता का संचार होता है। सूर्य दशा के ६ वर्ष बीतने के उपरान्त १० वर्ष की महादशा चन्द्रमा की रखी गयी। १६ वर्ष बीतते ही बालक के जीवन में स्वभावतः उद्दण्ता का समावेश होने लगता है। ७ वर्ष का यह समग्र मंगल की महादशा का रखा गया। इसप्रकार उसकी आयु २३ वर्ष की हो गयी। इस आयु में उसका खिंचाव विपरीत लिंग की ओर स्वाभाविक रूप से होने लगता है। मन नाना कल्पनायें बुनने लगता है। यह समय उसके जीवन में कुछ अधिक ही रहता है। इसलिये यहां से १८ वर्ष राहू नामक छायाग्रह का काल रखा गया। उसका जीवन अब ४१ वर्ष का हो गया।

आसक्त जीवन की निस्सारता का बोध जब होने लगा तो वह अन्तर्मुखी हो, अपने होने का सत्य खोजने लगा। १६ वर्ष की महादशा देवगुरू बृहस्पति की आरम्भ हो गयी। इस दशा में वह जीवन के ५७ वर्ष की आयु तक रहा। ज्ञान विज्ञान को सिद्ध करने के लिये हठ पूर्वक तपने लगा। १९ वर्ष की महादशा शनि की प्रारम्भ हो गयी। ७६ वर्ष की आयु तक आ गया। उसने जीवन का सूक्ष्म अध्ययन किया है। उसने जीवन के सत्य को तप कर अर्जित किया है। १७ वर्ष की बुध दशा का आरम्भ हो गया। वह महामण्डलेश्वर जैसा अपने ज्ञान को दूसरों को

देने का, उन्हें सत्य का मार्ग दिखाने का अधिकारी है। ६३ वर्ष की आयु इसी में व्यतीत होगी। उसके उपरान्त ७ वर्ष सिर विहीन, अर्थात एकाग्र मन से घनघोर आत्मा में तप कर, आत्मा से अद्वैत करते, आत्म यान रूपी देवयान से ब्रह्माण्ड से ज्योति बन गमन करना होगा। यह समय सिर विहीन केतु को दिया गया है। यही उसका १०० वर्ष का मानव जीवन है। **जीवेम शरदः शतम्।**

यदि ऐसा नहीं कर पाया तो अगली महादशा २० वर्ष की शुक्र की आरम्भ होगी। जहां वह भौतिकताओं को भोगेगा, भौतिकतायें उसे यथा रोग और व्याधि बनकर भोगेंगी। पितृयान से धूम्रमार्ग से उसे पुनः आवागमन हेतु भटकने यथा योनियों में प्रायश्चित हेतु जाना होगा। मानव आयु की कल्पना १२० वर्ष ही रखी गयी है। परन्तु वेद का प्रत्येक ऋषि के १०० वर्ष जीने की ही कामना करता है। शेष २० वर्षों के जीवन में उसकी कोई रूचि नहीं है।

कालपुरूष के जीवन की आदि कल्पना से पाराशर विंशोत्तरी दशा आरम्भ होती है। अब शिशु जब जन्म लेता है तो यथा नक्षत्र चरण महादशा का विधान ज्योतिषी करके देखता है। महादशा का आरम्भ अब कहां से हो रहा है। इससे पूर्व की महादशा गत है। यह पूर्व जीवन में भोग आया है। अब इसके जीवन के किन पहलुओं का विस्तार होगा ? कौन कौन से भाव इसके जीवन में प्रमुख रूप से व्याप्त होंगे तथा कौन कौन से अध्याय हैं जिन्हें यह खोलना ही नहीं चाहेगा ? इसका जीवन पर्यन्त स्वभाव कब कब कैसा होगा ? इसके जीवन पर किन भावों का विशेष प्रभुत्व होगा ?

कुण्डली का सर्वाधिक कारक ग्रह कौन है ? शुभ कारक ग्रह कौन से हैं ? अकारक तथा बाधक ग्रह कौन से हैं ? जन्म कुण्डली में राशियों

की अवस्था क्या है ? उनके फल और प्रभाव कब कब, क्या और कैसे होंगे ? आदि !

आकाश और पाताल की अवस्था का भान ज्योतिषी के लिये अनिवार्य है। आप एक गोल वृत्त बनायें। उसके १२ भाग समान रूप से करें सबसे ऊपर से १, २, ३, आदि की गिनती १२ तक लिख दें। यह आपकी जन्म कुण्डली को दूसरे ढंग से लिखने की प्रक्रिया है। आप देख सकते हैं कि इसमें स्पष्ट दो गोल उत्तर और दक्षिण बनते हैं। एक ऊपर तथा दूसरा नीचे। ऊपर वाला देव गोल है। नीचे वाला यम गोल है। बीच का चौथा तथा दसवां घर दोनो गोलों में उभय है। अब ग्रहों को यथा स्थान रख कर देंखें। देव गोल में स्थापित ग्रह अध्यात्मिक फलदायक विशेष हैं। इनका भौतिक उपलब्धियों पर प्रभाव न्यून रहेगा। यम गोल में स्थापित ग्रहों की भौतिक आस्था विशेष रहेगी। यह आसक्तियों को बढ़ाने वाले अधिक रहेंगे। चौथे तथा दसवें घर में बैठे ग्रह द्विस्वभाव के संतुलित होंगे। शिशु का स्वभाव कुण्डली के ग्रहों के अनुरूप रहेगा। इसे ग्रहों के प्रदत्त संस्कार कहते हैं। बच्चे की आधारभूत संस्कारगत स्वभाव को इससे जानने की प्रथा रही है।

कुण्डली में दो राजाओं की कल्पना है। दिन का राजा सूरज तथा रात्रि का राजा चन्द्रमा। इसीलिये इनको एक एक राशि ही दी गयी। बाकी दरबारियों को दोनो दरबार करने से दो दो राशि का विधान किया गया।

कर्क राशि में रात्रि के राजा चन्द्रमा का सिंहासन लगाया गया। सिंह राशि में दिन के राजा सूर्य विराजे। उसके उपरान्त युवराज बुध सूर्य की बगल में कन्या राशि में स्थित हुए। चन्द्रमा के दरबार में भी उन्हें राजा के समीप मिथुन राशि में स्थान दिया गया। फिर आचार्य की बारी आयी। राजा सूर्य ने युवराज के समीप तुला राशि में उन्हें स्थान

दिया। राजा चन्द्रमा ने भी उन्हें युवराज बुध के समीप वृष राशि में उन्हें आदर सहित बिठा दिया। राजा चन्द्रमा ने सेनापति मंगल को आचार्य के पास मेष राशि में स्थापित किया। राजा सूर्य ने भी सेनापति को आचार्य के समीप वृश्चिक राशि में स्थापित किया। राजा सूर्य के सम्मुख सेनापति के पास, धनु राशि में देव गुरू बृहस्पति सम्मान सहित बैठाये गये। राजा चन्द्रमा ने भी देवगुरू बृहस्पति को अपने सम्मुख सेनापति मंगल के समीप मीन राशि में उन्हें विराजा। भृत्य शनि को द्वार रक्षक के रूप में मकर तथा कुम्भ राशियों में स्थापित किया गया। यहां एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। सूर्य को विषम राशि तथा चन्द्रमा को सम राशि ही प्रदान की गयी। जबकि शेष सभी ग्रहों को सम तथा विषम राशियों का स्वामी समान भाव से बनाया गया।

कुछ अन्य कबीलों में दो राजाओं के स्थान पर, राजा सूर्य और रानी चन्द्रमा के दरबारों में दरबारियों के रूप में शेष सभी ग्रहों की स्थापना की चर्चा है। शेष सब कुछ वैसा ही है।

बालक ज्योतिष विज्ञान को निरन्तर ग्रहण कर रहे हैं। नित्य हवन वेद का पाठ तथा मन्दिर की पूजा का नियम भी अटल है। प्रकृति से साम्य, पेड़, पौधों वनस्पतियों की आत्म भाव से प्रेरित सेवा, गौओं तथा अन्य जीवधारियों की आत्मपरक सेवा से उन्हें असीम आनन्द एवं ज्ञान की प्राप्ती होती है। उनकी जिज्ञासा घटने के स्थान पर बढ़ती जाती है। वन से सूखी लकड़ियों को चुनकर रसोई के लिये लाना, पेड़ पौधों के विषय में ज्ञान प्राप्त करना, खेती के सूक्ष्म रहस्यों से परिचित होना, उन्हें व्यवहारिक रूप से कर सकने की दक्षता आदि पाना उन्हें बहुत ही रोचक एवं आकर्षक लगता है। वे गुरूकुल के वातावरण को आत्मसात करते पूरी तरह से रम गये हैं। उन्हें घर की याद भी नहीं आती। उन्हें सबकुछ सहज स्वाभाविक सा लगता है।

उनके मन में बहुत सी भोली जिज्ञासायें हैं। गुरूकुल उनकी इन जिज्ञासाओं को बहुत ही मनोवैज्ञानिक ढंग से बढ़ाता रहता है। वे उन्हें जिज्ञासा करने का अवसर देने में सदा तत्पर रहते हैं। जिज्ञासा है तो शिक्षा की तड़प है। यदि जिज्ञासा को दबा दिया गया, तो शिक्षा के प्रति रूचि भी नहीं रहेगी। बालक शिक्षा को लाद ही सकेंगे, शिक्षा को आत्मसात तो कदापि न कर पावेंगे। इसलिये बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से शिक्षा में नित्य नई जिज्ञासाओं को प्रकट किया जाये। उन्हें बहुत ही रोचक बनाकर बालक के बुद्धिबल के अनुरूप ढालकर छात्र तक लाया जाये, जिससे बालक सहज ही आत्मसात कर सके। ईश्वरीय लीला कथाओं का जन्म स्थान भी गुरूकुल ही है। श्रीराम की लीला कथा, श्रीकृष्ण लीला कथा, महाशिव की लीला कथायें, देवी देवताओं की लीला कथाओं के माध्यम से जीवन के गूढ़ रहस्यों को छात्र तक लाना ही नहीं, सहज ही उसे आत्मसात करवा देने की अदभुत शिक्षा प्रणाली गुरूकुल ने विकसित कर ली है। छात्र ज्ञान को लादते नहीं हैं, ज्ञान और छात्र में सदा के लिये अद्वैत हो जाता है। छात्र और ज्ञान एक हो जाते हैं।

त्रेतायुग की श्रीराम चन्द्र की ऐतिहासिक कथा को आत्मपरक लीला कथा बनाकर अमरता प्रदान की गयी है। इतिहास को अध्यात्म के पंख लगाकर प्रत्येक व्यक्ति की आस्थाओं के साथ अमर किया गया है। अतीत का इतिहास नित्य वर्तमान बनकर अमरता के साथ ही महान, जन जन की प्रतिष्ठा, श्रद्धा, आस्था, समर्पण एवं जीवन का अमृत बन गया है।

श्रीराम इतिहास के साथ ही अध्यात्म नायक बन गये हैं। वे महाविष्णु के लीलावतार हैं। अर्थात घटघट वासी आत्मा हैं। आत्मा ही परमात्मा का लीलावतार है। मन को ही दशरथ तथा दशानन बनाया गया है।

यदि मन की दश इन्द्रियां **रथ** लीं तो दशरथ, यदि दश इन्द्रियां दश मुख बन विषयों में भटकाने लगीं तो दशानन रावण ! इस कथा का विस्तार हम **सरयु-के-तट** नामक ग्रन्थ में विस्तार से कर चुके हैं।

वसुदेव श्रीकृष्ण के उपरान्त उनके अनन्य भक्त पितामह श्रीकृष्ण द्वैपायन जो वेदव्यास के नाम से प्रसिद्ध हैं, उन्होनें श्रीकृष्ण को लीलावतार के रूप में गुरूकुल शिक्षा में ग्रहण किया। दोनो ही महाविष्णु के लीलावतार कहलाये। इसकी कथा का विस्तार हमने **रहस्यलीला-जादु-और जादुगर** तथा इंगलिश में (Lord Krishna: In The Mirror Of Mysteries Revealed) भी इसका प्रकाशन हुआ है। यहां पर वसु अर्थात अग्नि तथा देव अर्थात देवता, वसुदेव अर्थात अग्नियों का देवता आत्मा तथा ब्रह्मज्वाला को देवकी के रूप में, यथा नाम तथा गुणाः के रूप में ग्रहण किया गया है। वसुदेव एवं देवकी, आत्मा एवं ब्रह्मज्वाला, मिलकर ही प्रत्येक देह में नवजात शिशु को जन्मते हैं। पालक माता तथा पिता मात्र नन्द एवं यशोदा की भांति उन्हें पालते भर हैं। शिशु के अंग बनाना तो दूर, वे अपने ही शरीर का एक कोश बनाना नहीं जानते। परन्तु उनका मन कंस जब उनपर हावी होता है तो वे सत्य से परे संकीर्णता की पतित जिन्दगी जीने पर विवश हो जाते हैं। मन कंस मरे तो आत्मा और आत्मज्ञान श्रीकृष्ण के दर्शन हों।

नाना पुराणों की पीढ़ा भी यही है। उन्हें जब से साम्प्रदायों की मुहरों के आधीन होना पड़ा, उनके स्वरूप ही बदल गये। पुराण का अर्थ प्राचीन अथवा पुराना, ऐसा हमें अतीत के युगों में कहीं नहीं मिलता है। **पुर** कहते हैं शरीर को, नगर को, स्थान को। **अण** तथा **अणु** का अर्थ एवं भाव अति सूक्ष्म के रूप में ग्रहण किया जाता है। जीवन के सूक्ष्म सत्य को, परोक्ष लीला कथाओं द्वारा स्पष्ट करके, प्रत्येक छात्र को उसका सूक्ष्म परिचय देकर, उसके जीवन को अमृतमय बनाना।

उसे धरती भर, अच्छाईयों का भगवान बनाकर समाज को लौटाना ही पुराणों का मूल उद्धेश्य, गुरूकुल शिक्षा में रहा है।

लगभग सभी प्राचीन ग्रन्थों के मौलिक स्वरूप को, भोजपत्रों से पुस्तक तक आने में शल्यक्रियाओं से गुजरना पड़ा है। **शतपथ ब्राह्मण** जैसे अलभ्य ग्रन्थ भी इनसे अछूते रहे हों, ऐसा नहीं है। गुरूकुल शिक्षा के काल में जन्मना व्यवस्था का विधान ही नहीं था। श्रीमद्भगवतगीता, महाभारत महापुराण, श्रीमद् भागवत पुराण तथा वेद भी वर्ण व्यवस्था को गुण कर्म विभागसा ही मानते हैं। गुरूकुल व्यवस्था में यज्ञोपवीत संस्कार गुरूकुल में ही होता है। जबकि इस ग्रन्थ में अलग अलग वर्ण में आयु के प्रमाण अलग अलग सुझाये गये हैं। समय और मास में भी भेद किया गया है। गुरूकुल के सत्रों का भी विचार नहीं किया गया है। गुरूकुल में क्या जाति के आधार पर अलग अलग समय और मास से सत्र का आरम्भ सम्भव है ? समय के लिखे को बदलने वालों ने उसके परिणाम एवं व्यवहारिकता पर सम्भवतः ध्यान ही नहीं दिया। महाभारत काल के काफी उपरान्त समय तक गुरूकुल व्यवस्था व्यवहारिक रही है। यवन दासता में ही इसने दम तोड़ा। ऋषि, तपस्वी, मनस्वी आचार्यगण मारे गये। गुरूकुल, ऋषिकुल, विश्वविद्यालय भोजपत्रों सहित जलाये गये। ताम्रपत्रों, रजतपत्रों, स्वर्णपत्रों पर लिखे साहित्य को गलाकर धातुओं में बदल कर लूट लिया गया। यहां तक कि शिलालेखों को भी अतीत की पहचान मिटाने के लिये ध्वस्त कर दिया गया।

त्रेता युगीन व्यवस्था में भी हमें वर्ण व्यवस्था का स्वरूप महाभारत काल जैसा ही मिलता है। निषादराज का पुत्र गुह्य अपने सभी निषाद मित्रों के साथ, मुनि वसिष्ठ के आश्रम में श्रीरामचन्द्र के साथ पढ़ता ही नहीं, उनका अन्तरंग मित्र एवं सखा है। केवल दासता के अज्ञान को धर्म मान लेना सही नहीं होगा। महाभारत काल तक मानव मात्र मानव

है। भारत के संविधान में अल्पसंख्यक, बहुसंख्यक, अनुसूचित, जनजाति, अगड़ा पिंछड़ा, सबकुछ है। मानव केवल मानव है भी, अथवा नहीं, यह स्पष्ट नहीं है।

द्वापरयुग में भी स्वयं वेदव्यास के पिता महर्षि पराशर ब्राह्मण हैं तथा माता सत्यवती निषाद कन्या है। यहां तक कि इन युगों में विधवा पुनर्विवाह की आम प्रथा है। अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह को भी पूरी मान्यता है।

गुरूकुल में सत्र का आरम्भ एक ही समय पर होता है। बालक का यज्ञोपवीत संस्कार भी गुरूकुल में ही होता है। बालक मन्त्र भी गुरूकुल में ही ग्रहण करता है।

• ज्योतिर्वेद, ज्योतिष और जीवन !

ज्योतिर्वेद का अर्थ ज्योतिष और नक्षत्र विद्या (Astrology and Astronomy) भर ही नहीं है। जीवन ज्योति के सूक्ष्म रहस्यों एवं उत्पत्ति के सूक्ष्म विज्ञान का महासागर है। त्रेता युग के समापन काल में इसका लोप प्रलय द्वारा हो गया था। इसकी चर्चा हम **ज्योतिर्वेद के विभिन्न सोपान-प्रथम खण्ड** में कर चुके हैं। इसकी व्यापक चर्चा हमें महाभारत, अग्निपुराण, मार्कण्डेय पुराण, हरिवंश पुराण तथा अन्य नाना पुराणों में मिलती है। श्री कृष्ण ने श्रीमद्भगवतगीता में इसकी व्यापक चर्चा के साथ वर्ण व्यवस्था, धूम्रमार्ग पितृयान, शुक्ल मार्ग देवयान जैसे ज्योतिर्वेद के लुप्त विषयों को स्पष्ट किया है। श्री कृष्ण ने भी मनु संहिता तथा ज्योतिर्वेद के लुप्त होने की पुष्टि की है।

वर्तमान काल में उपलब्ध वेद अतीत की पुनर्रचना का सद्प्रयास भर हैं। श्रीकृष्ण की इच्छा एवं आदेश पर ऋषि आश्रमों से इन्हें वेदव्यास ने संकलित करके गुरूकुल शिक्षा को जन जन तक पहुंचाने का प्रयास किया था। उन्होंने ही संकलन के तीन भाग वेदत्रयी के रूप में किये थे। चौथा वेद उनके द्वारा संकलित नहीं है। उसके संकलन कर्त्ता ऋषि अथर्वन हैं। उन्हीं के नामान्तर इस वेद का नाम अथर्ववेद रखा गया। प्रथम तीन वेदों को विभाजित गुरूकुल शिक्षा के हित में किया गया था। उन्हें इसप्रकार जानना चाहिये :–

१. ऋग्वेद – ऋग्, ऋत्, ऋक् का अर्थ है, आत्मा सम्बन्धी। अध्यात्म से जुड़ा हुआ।
२. यजुर्वेद – यज का अर्थ जुड़ने से है। आत्मा एवं भौतिक जीवन को कर्मकाण्ड के द्वारा जोड़कर जीवन को उद्धेश्यपरक बनाने वाला, जीवन और अध्यात्म को जोड़ने वाला। पूजा,

पाठ, यजन, युजन के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों एवं दायित्वों का निर्वाह करते आत्मा से जुड़ने और अनन्त पाने की कल्पना है।

३. सामवेद – जीवन को सामंजस्य, समभाव, अनासक्त भक्ति, आत्मा से मधुर मिलन एवं प्रगाढ़ सम्बन्ध के साथ प्रत्येक क्षण उससे जुड़कर जीने की तड़प, जीवन को आत्मा की मधुर स्वरलहरी में झूमकर जीने की कला है। श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है " हे अर्जुन तीनों वेदों में मैं सामवेद हूँ !" श्रीकृष्ण सखा हैं। अर्थात साम्यवादी हैं। वे अर्जुन को भी सखा ही कहते हैं, जबकि अर्जुन उन्हें अपना गुरू मानता है। आत्मा भी जीव मात्र की देह में सखा है। उसका न कोई छोटा है और ना ही कोई बड़ा है।

४. अथर्ववेद – अथर्वन ऋषि के नामान्तर इसका नाम अथर्ववेद पड़ा। इसमें ज्योतिर्वेद के मन्त्रों का समावेश है।

ज्योतिर्वेद के अंश लगभग सभी वेदों में मिलते हैं। इनसे केवल इसी कल्पना को विशेष बल मिलता है कि ज्योतिर्वेद ही मूल धर्म ग्रन्थ रहा है, उन लोगों का, जिन्होंने धरती को जीवन से वरद किया था। इसके नाना अंग थे। नक्षत्र विज्ञान, ज्योतिष, सृष्टि विज्ञान, जीव विज्ञान, यांत्रिकी, देवयानों के विज्ञान, और भी बहुत कुछ ! कुछ प्रलय ले गयी, कुछ गुलामी के अन्धेरे, बाकी स्वतन्त्र भारत सरकारों की अगवा भगवा राजनीति का विदूषक वाद, अवसरवाद ! भारत में मानव के नाम पर बस वोटबैंक ही रहते हैं। पिछले ५० वर्ष यूंहीं कीर्तन करते बीत गये हैं।

ज्योतिष को समझने के लिये जीवन को समझना परमावश्यक है। जब ज्योतिष की चर्चा होगी तब जीवन की ज्योतिर्वेद की मान्य व्याख्या तथा विज्ञान को जानना जरूरी होगा। ऐसा नहीं हो सकता कि आप

जीवन को किसी अलग व्याख्या में देखें और ज्योतिष की आदि अवधारण में उसे जानने का प्रयास करें।

जीवन की उत्पत्ति क्षीरसागर में ही सम्भव है। कोश जीवन का अंग है। जीवन्त है। परन्तु इसे जीवन मान लेना उचित नहीं है। जीवन की अपनी परिभाषा है। कोशों से बना शरीर, वह जीवन्त घर है, जिसमें जीवन टिका हुआ है। इसे ही ज्योतिर्वेद ने समीकरण के हित में जीव अथवा जीवात्मा नाम संज्ञा प्रदान की है। जो सुन रहा है। जो बोल रहा है। जो सोच रहा है। जो शरीर में रहता हुआ, शरीर से पूरी तरह जुड़ा हुआ, शरीर से ही अपनी पहचान खोजता हुआ **मैं** है, उसे जीवात्मा कहा गया है। सुख दुख, हर्ष शोक, जय पराजय, मिलन बिछोह, प्रणय प्रतिशोध में उलझा हुआ है, उसे समीकरण में जीव अथवा जीवात्मा नाम संज्ञा प्रदान की गयी है।

समीकरण का तीसरा बिन्दु वह अनन्त शक्ति है, जो शरीर को निरन्तर बनाती रहती है, इसे प्रकट करती है, इसका पुनर्निमाण करती है, इसे सन्तति से युक्त करती है, नवजात शिशु के शरीर की संरचना गर्भ में करती है, पुरूष को वीर्य से तथा माता को अण्ड तथा दूध से वरद करती हुई भी प्रत्यक्ष रूप में अपने होने का भान भी नहीं कराती, आत्मा है। जीवात्मा **भोक्ता** है, आत्मा **दाता** है। आत्मा ही शरीर में क्षीरसागर अर्थात गुरूत्वाकर्षण विहीन क्षेत्र की संरचना एवं रक्षा जीवात्मा के हित में करती है। जीवात्मा इन सबकी सामर्थ्य एवं ज्ञान से हीन है। उसके शरीर में यह सब कैसे होता है, कौन करता है, उसके पास इसका कोई ज्ञान नहीं है। इसप्रकार जीवन शब्द का भाव तीनो अंगों को ग्रहण करके ही लिया जाता है। केवल एक कोश से तो कदापि नहीं।

आत्मा के साथ परम का संयोजन करके परमात्मा शब्द, ॐ, गाड, अल्लाह, परमेश्वर आदि का प्रतीक बना। सम्पूर्ण सचराचर में व्याप्त सत्ता अथवा महाशक्ति जो धारण+सृजन+संहार से युक्त सृष्टि में समर्थ है, उसे परमात्मा कहते हैं। उसका सचराचर व्यापी सम्पूर्ण सत्ता सम्पन्न स्वरूप **आत्मा** के रूप में जाना जाता है। वस्तुतः ये शब्द ज्योतिर्वेद महाविज्ञान के ही शब्द हैं। कालान्तर में, वेद के मूल विज्ञान के लुप्त हो जाने के उपरान्त, आस्था और धर्म की बैसाखी ने इन्हें युगों के अन्तराल में खोने नहीं दिया। इन्हें इसकी कीमत भी चुकानी पड़ी। विज्ञान की मान्यता खोकर, इन्हें अन्ध आस्था के प्रतीक के रूप में भ्रमित होना पड़ा।

इनके स्वरूप को लेकर नाना मत मतान्तर, समय के साथ नयी कल्पनाओं को लेकर भिड़ते रहे। सगुण निर्गुण, धरती पर घटघट वासी अथवा सेवेंथ हैवेन, सात आसमान, अथवा कितने ही आसमान दूर, उन्हें भेज दिया गया। एक महाविज्ञान काल्पनिक युद्धों में बदनाम होकर रह गया। समीकरण ही जब भटक गये तो उत्तर कैसे मिल पाते।

थोड़ा समीकरण बनाकर चलें ! मैं कौन हूँ ? क्यों हूँ ? किसके द्वारा हूँ ? फिलहाल इतने ही प्रश्न लेकर समीकरण बनाने का प्रयास करते हैं। यूँ तो सचराचर भर, प्रश्नों के उत्तर हमें खोजने हैं।

क्या मैं शरीर हूँ ? शरीर से ही मेरा अस्तित्व है। शरीर नहीं तो, मैं कहां ? परन्तु शरीर भर ही तो मैं नहीं हूँ। यह भी सच है कि शरीर से ही मेरी पहचान है। मेरा अस्तित्व है। शरीर से ही लोग मुझे पहचानते हैं। शरीर से ही मैं कुछ कर पाता हूँ। परन्तु मैं कोरा शरीर तो नहीं हो सकता। मैं सोचता हूँ, समझता हूँ, रोता और हंसता हूँ प्यार और घृणा भी करता हूँ, संसार को जानता हूँ। अपने पराये का

भेद करना भी आता है, मुझे। जय पराजय, लाभ हानि, सुख दुख की अनुभूति होती है मुझे। माता, पिता, पति, पत्नी, पुत्र, पुत्री, इन सबको मैं जीता हूँ। इनको जन्मने पालने का दम्भ भी करता हूँ। जबकि मुझे शरीर का एक अदना कोश बनाना भी नहीं आता। यदि मैं शरीर हूँ तो स्वयं से अनभिज्ञ अपरिचित क्यों हूँ ? शरीर, जब मैं हूँ तो यह शरीर मेरे आदेश पर पूरी तरह से क्यों नहीं चलता ? सांसे, धड़कने, कोशों का निर्माण भी मेरी इच्छा पर क्यों निर्भर नहीं करता ? अपने ही शरीर में मेरी अवस्था एक किरायेदार अथवा अतिथि की जैसी क्यों है ? जन्म और मृत्यु मेरी इच्छा पर निर्भर क्यों नहीं करते ? कौन है जो मुझे, जब चाहता है, तब इस शरीर से बिदा कर देता है ? मुझे शरीर बनाना भी नहीं आता, तो फिर बनाता कौन है ? कौन मुझे पुनः नये शरीर में लाता है ? मैं स्वयं से परिचित किस प्रकार हो सकता हूँ ?

आत्मा !! क्या मैं आत्मा हूँ ? अजर अमर परमात्मा का सूक्ष्म स्वरूप सर्वशक्तिमान मैं ही हूँ ? परन्तु मुझमें उत्पत्ति, सृष्टि अथवा प्रलय का कोई भी ज्ञान अथवा सामर्थ्य नहीं है ? मैं, आत्मा होने का विश्वास स्वयं को किस प्रकार दे सकता हूं ? जबकि, यह भी उतना ही सही है कि मुझे आत्मा ने ही बनाया है। मैं आत्मा की ही कृति हूं, परन्तु मैं आत्मा के कृतित्व एवं ज्ञान से सर्वथा हीन भी तो हूं, फिर मैं कौन हूं ?

मैं जीवात्मा हूं ! जीवन पहेली के समीकरण का तीसरा अक्षर ! जीवात्मा, जिसके लिये ही शरीर की कल्पना आत्मा के द्वारा प्रकृति के संयोग से साकार हुई। जीवन रूपी महाभारत का अर्जुन हूं मैं। शरीर रथ है, वाहन है। आत्मा सारथि है।

आदि विज्ञान ने खोज से पहले, जिसे खोजा जाना है, उसे स्पष्ट करना चाहा है। जीवन, स्वयं में अपरिभाषित शब्द है। इसकी नाना

भ्रान्तियुक्त व्याख्यायें हो सकती हैं। सबसे पहले जीवन के समीकरण को स्पष्ट होना चाहिये। जिसे आप खोज रहे हैं, उसे आप पहचानते भी हैं ? कोश को पकड़कर जीवन खोजना ऐस ही है जैसे कोई उस व्यक्ति को खोजे जिसे उसने कभी ठीक से जाना ही नहीं। जीवित कोश के सहारे वह अपनी खोज आरम्भ कर दे, कि जिसे वह खोजना चाहता है वह जीवित कोशो से बना है।

सूक्ष्म ब्रह्म, जिससे सम्पूर्ण जड़, चेतन, सचराचर निर्मित है, जीवन्त ही नहीं, अमर भी है। तो फिर खोज के बिन्दु कोश अथवा अतिसूक्ष्म प्राणी ही क्यों ? **वह प्राणी किसी मान्य प्रक्रिया के द्वारा ही जड़ से जीवन्त होता है, भले ही वह वायरस अथवा बैक्टीरिया ही क्यों ना हो।** बिना समीकरण के किसी भी प्रकार की सृष्टि अथवा हलचल सम्भव ही नहीं है। दुर्घटना, ऐक्सीडेन्ट, बिग बैंग से सृष्टि की उत्पत्ति, क्या सम्भव है ? क्या एक पिल्ला भी उत्पन्न हो सकता है ? सृष्टि के समीकरण खोजे बिना सृष्टि का परिचय अथवा पहचान भी नहीं हो सकती, अन्यथा गणित के सारे प्रश्न ही बिना समीकरण के हल हो जाते। जीवन के समीकरण इतने आसान भी नहीं, कि उन्हें बिना किसी समीकरण के धड़ाकों से हल कर लिया जाये। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि आजादी के ५१ वर्ष उपरान्त भी हमारे नेता और कर्णधार साम्प्रदायिकता और जातिवाद में ही सत्ता के समीकरण खोज कर, भारत और भारतीयता को लज्जित कर रहे हैं। विश्व के विज्ञान और लोग सुदूर ग्रहों पर पहुचंने के लिये प्रयत्नशील हैं। हम शिक्षा में भी सड़ी राजनीति करके देश के लोगों को क्या देना चाहते हैं ? अनुसंधान के लिये विश्व की सरकारें खरबों डालर खर्चा करती हैं। शायद विश्व के लोग जब अन्य ग्रहों पर जा रहे होंगे तो उन्हें कुलियों की जरूरत पड़े ? अगवाकरण और भगवाकरण से हम कहां बाज आने वाले हैं।

बहुत ही विनम्रता से इस देश के शिक्षाविद्धों का ध्यान इस ओर चाहुंगा। जब शिक्षा गुरूकुल में वीतराग सन्यासी के साथ थी तो आप का सम्मान और सोच आत्मपरक थी। समाज में आपका यथा सम्मान था। आप भी अध्यात्म की उन्नत राह पर जाना अपना सौभाग्य मानते थे। जब से शिक्षा नेता की जेब में आयी है, आपकी अवस्था अब क्या है ? शिक्षा के मापदण्ड अब कौन तय करता है तथा कौन शिक्षा को मात्र एक कुली की तरह ढोता है ? अगवा भगवाकरण वाले वोटबैंक वादी अथवा आप लोग ?

जब शिक्षा गुरूकुल में थी आप देवता के समान पूज्य ही नहीं, देवता बनकर दिखाते थे ! अब जब शिक्षा नेता की जेब में, नेता की सोच भर बनकर रह गयी है, आप में कितने हैं जो नेता नहीं बनना चाहते ? इस दिशा परिवर्तन को आप कितना सकारात्मक मानेंगे ?

जिन्हें केवल धर्मग्रन्थ मानकर मन्दिर तक सीमित कर दिया गया, वही अतीत के युगों का सशक्त विज्ञान भी था। शिक्षा से कट जाने तथा साम्प्रदायिक विचारधाराओं के प्रचार प्रसार के कारण यह महा विज्ञान गुमनामी के अन्धेरों में सिमट कर रह गया। आजादी के उपरान्त वोटबैंक की राजनीति इसे अब फांसी देने पर उतर आयी है।

जीवन को समीकरण द्वारा ही स्पष्ट किया जा सकता है। शरीर का कोश, वायरस, जीन अथवा बैक्टीरिया, किसी समीकरण के द्वारा ही बनते हैं। आयु तथा क्रियान्वयन शक्ति एवं विवेक को भी समीकरण द्वारा ही ग्रहण करते हैं। उनका अन्त तथा पुनर्जीवन भी समीकरण से ही निर्धारित होता है। समीकरण के हस्तान्तरण के द्वारा जीवन को स्पष्ट कर सकते हैं, इस सत्ता पर अधिकार प्राप्त कर सकते हैं, अमर सत्ता के अमर अधिकारी हो सकते हैं। ज्योतिर्वेद इसी महाविज्ञान का

लुप्तप्राय ग्रन्थ है। चारों वेद तथा अतीत के ग्रन्थ ,इसी का अनुसरण करते हैं। ज्योतिष भी इसी का अंग है।

हम गुरूकुल में छात्रों के संग ज्योतिष के गूढ़ ज्ञान को समझने में प्रयत्नशील हैं। आचार्य बालकों को अनुभूत योग बता रहे हैं। ग्रहों के गुरूत्वाकर्षण के नाना प्रभाव तथा नक्षत्रों के ग्रहों पर पड़ने वाले प्रभाव से ग्रहों के प्रभाव के बदलाव आदि का विस्तार, बालक आत्मस्थ कर रहे हैं। ग्रहों से आने वाले ज्योतिकणों के प्रभाव, ब्रह्माग्नियों, देवाग्नियों, पशुपताग्नियों का निरन्तर धरती और जीव पर पड़ने वाले प्रभाव का सूक्ष्म ज्ञान उन्हें ज्योतिर्मय बना रहा है। योग द्वारा इन अग्नियों पर नियन्त्रण एवं मानव जीवन में ही देवसत्ता की प्राप्ती के रहस्य, उन्हें विस्मित करते हैं।

• जन्मराशि, लग्न एवं चलित चक्र !

गुरूकुल के मनोरम वातावरण में, आचार्यों के मनोवैज्ञानिक संरक्षण में, शिक्षा को बालक की मनोकूलता प्रदान कर, सरल एवं सरस ग्राही स्तर प्रदान कर, अमृत तुल्य स्वरूप दिया गया है। बालक जितना जानते हैं, जिज्ञासा, उत्कंठा और ललक उतनी ही बढ़ती जाती है। गांव, घंर की याद भूल से भी नहीं आती।

ज्योतिष एवं ज्योतिर्वेद, प्रत्येक बालक के लिये अनिवार्य विषय है। ऐसा क्यों ? क्या प्रत्येक बालक जीवन में ज्योतिषी बनना चाहेगा ? कदापि नहीं ! फिर यह विषय अनिवार्य क्यों किये गये ? इनका बालक के जीवन में क्या महत्व हो सकता है ?

गुरूकुल ने माना कि इनका ही उसके जीवन पर सर्वाधिक महत्व है। इनके बिना बालक का सम्पूर्ण जीवन अधूरा ही नहीं, नितान्त व्यर्थ है। निरूद्धेश्य है। लक्ष्यहीन है।

ये विज्ञान उसके जीवन की सार्थकता हैं। इनके द्वारा ही वह स्वयं को, मानव जीवन के निहित उद्धेश्यों को, मानव जीवन के परम लक्ष्य को जानता है, अंगीकार करता है, सार्थक लक्ष्य के हित में जीवन के अमूल्य क्षणों को अर्जित करता, अमर राह लेता है। जब तक धरती पर मानव के रूप में रहता है, धरती, परिवार, समाज तथा सचराचर का वरद पुत्र और सबका सुखकर्त्ता ही बनकर जीता है। उससे सभी धन्य होते हैं। दूसरों के लिये भले न सही, उसके व्यक्तिगत हितों के लिये, उपरोक्त विषयों की अनिवार्यता स्वयंसिद्ध है। यज्ञ, मन्दिर, पूजा, अर्चना, जप, तप, योग, समाधि आदि इसके ही अंग हैं। इनका भले ही

कोई व्यवसायिक उपयोग ना हो, उसके व्यक्तिगत जीवन की सार्थकता इन्हीं में निहित है। इस दृष्टि से यह विषय अनिवार्य हैं तथा अत्याधिक महत्वपूर्ण हैं।

जीवन, प्रकृति एवं पुरूष के साथ ही ग्रहों की मायाओं का खेल है। जीवन के सूक्ष्म रहस्य, इन्हीं ग्रहों की माया के सन्तुलित प्रभाव की देन हैं। इन्हें जानना, जानकर जीवन में इनका सही उपयोग करते लक्ष्य को पाना ही तो अभीष्ट है। यदि मानव जीवन पाना ही अभीष्ट है, तो जीवन पाकर मरना क्यों ? मंजिल पर पहुंच कर फिर लौटना क्यों ? मानव जीवन अभीष्ट की प्राप्ती का साधन है, साध्य नहीं है। इसीलिये ज्योतिर्वेद, जीवन का अनिवार्य विषय है।

जब नवजात शिशु जन्म लेता है, माता के गर्भ रूपी क्षीरसागर अर्थात मायारहित क्षेत्र से माया में प्रवेश करता है, वही क्षण ज्योतिषी के लिये अति महत्वपूर्ण होता है। इस समय उसके शरीर पर ग्रहों एवं पृथ्वी की माया का प्रथम प्रहार होता है। अचानक, अनजाने हुए प्रहार का प्रभाव भारी तथा उसके सुषुप्त मस्तिष्क पर गहराई से अंकित हो जाता है। इसे ही इष्टकाल कहते हैं। इसी से ज्योतिषी जन्म चक्र बनाता है। इसे जन्म लग्न कहते हैं।

यदि माया उसके शरीर के क्षीरसागर तक पहुंच कर, तहस नहस कर देती तो बालक की मृत्यु हो जाती। शिशु की आत्मिक शक्ति, माया को परास्त कर ही उसे जीवन के क्षण प्रदान करती है। इस युद्ध को भी महाभारत ही कहते हैं। जीवन का प्रत्येक क्षण मायाओं को निरस्त्र कर ही पाया जाता है। जब युद्ध में शरीर परास्त होने लगता है, मृत्यु की चादर उसे अपने में समेट लेती है।

आप एक गोला, वृत बनायें। यह छोटा हो अथवा बड़ा, इसके कुल अंश सदा ३६० ही रहेंगे। इन्हीं अंशों को ३० से विभाजित करें। १२ घर बन जावेंगे। यही १२ राशियों वाला जन्म चक्र है। गगन में जन्म समय में जो राशि उस स्थान पर थी उसे ही जन्म लग्न की राशि, यथा अंश, कला, विकला लिखकर तथा सभी ग्रहों को, जैसे उस समय आकाश में थे, यथा घरों में बैठा देने पर जन्म कुण्डली का निर्माण होता है।

यह चित्र बताता है कि जन्म के समय ग्रहों तथा पृथ्वी की गुरूत्वाकर्षण शक्ति अर्थात माया का प्रथम प्रहार कैसा था, जिसे नवजात शिशु निरस्त्र करता अगली श्वासें पा सका। यदि सह न पाता तो निश्चय ही मर जाता। प्रथम प्रहार था। अचानक आक्रमण हुआ था। पहला अबोध प्रभाव था। निश्चय ही बहुत गहरे अंकित हो गया होगा। इसका प्रभाव उसके सम्पूर्ण जीवन पर रहेगा। इसलिये जन्म लग्न कहलायेगा। उसके सुशुप्त मस्तिष्क में यह प्रभाव उसका एक ऐसा संस्कार बन जायेगा जिसे वह सहज ही बदल नहीं सकता। यह स्थायी स्वभाव ही जन्मचक्र है।

नौ ग्रहों में, यूँ तो प्रत्येक ग्रह ही अति मूल्यवान है, परन्तु चंद्रमा का विशिष्ट महत्व है। देखने में सबसे छोटा, ग्रहों में भी उपग्रह मात्र, परन्तु धरा पर जीवन को स्थायित्व, गति, सुख, समृद्धि देने वाला अति मूल्यवान ग्रह है।

गम्भीर अतीत में, जब जीवन को धरा पर अवतरित करने की कल्पना को साकार किया जा सका था, जीवन में सामन्जस्य, अनुशासन, स्थायित्व एवं गति का नितान्त अभाव था। प्रलय के देवता, गुरूत्वाकर्षण के नियन्ता, कैलाश पर्वत पर विराजमान, महाशिव ने तब चन्द्रमा को अपनी जटाओं अर्थात गुरूत्वाकर्षण क्षेत्र (Gravity belt)

में स्थापित किया। ज्योतिर्वेद के अनुसार इस उपग्रह को हम सुदूर कक्षा से गुरूत्वाकर्षण की नियन्त्रण प्रक्रिया द्वारा, पृथ्वी माया के क्षेत्र में स्थापित कर सके। इस उपग्रह का निर्माण सुदूर कक्षा में, विभिन्न माया और क्षीरसागरीय प्रभावों के कारण इसकी संरचना ऐसी है कि उल्काओं के पात को सहकर भी बना रहे। इसका प्रभाव क्षेत्र पृथ्वी माया में होने के कारण, यह सभी ग्रहों की माया के प्रभावों का पृथ्वी पर संयोजक तथा गतिशीलता प्रदान करने वाला नियन्त्रक हो गया।

आप पूछ सकते हैं, यदि चन्द्रमा ना हो तो पृथ्वी के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

आप की चेष्टा, सोच समझ, कार्यक्षमता, सब कुन्द हो जायेगी। हर साल फलने वाले पेड़ों पर १२ साल में एक बार ही फल लगेंगे। स्त्री भी १२ वर्ष में ही सन्तानोपत्ति में समर्थ हो सकेगी। मन की कल्पनाओं और इच्छाओं का अकाल पड़ने लगेगा। हम सब आलसी, निकम्में और कुन्द हो जायेंगे।

मानसिक अस्पतालों में अमावस के दिन पागल नितान्त शान्त, गम्भीर रहते हैं। पूर्णिमा की रातों में महा उत्पात की सम्भावनायें निरन्तर बनी रहती हैं। सागर में ज्वार भाटा भी इसी अटल नियम पर ही टिका हुआ है। इसका विस्तार आप अति पूर्व के ग्रन्थ **सनातन दर्शन के नौ अध्याय** में विस्तार सहित देख सकते हैं।

एक अनपढ़ किसान भी जानता है कि अमावस में खेत में बीज बोना मूर्खता है। चन्द्रमा के प्रभाव के बिना बीजों के सड़ने का अन्देशा रहेगा। अंकुए भी देर में फूटेंगे। इसलिये खेत उजाले पाख में ही बोये जाते हैं। जंगल के ठेकेदार अन्धेरे पक्ष में ही जंगल कटवाते हैं। उनका मानना है कि उजेली रातों में जीवन के अधिक संचार के

कारण कटे पेड़ों में कीड़े पड़ जाते हैं। जबकि अन्धेरी रातों में कटे पेड़ सुरक्षित रहते हैं।

चन्द्रमा से ही तिथि और पक्ष के विधान का यही विशेष महत्व है। सूर्य को जीवन में आत्मा के समान सम्मान एवं पद प्रदान किया गया है। चन्द्रमा को मन की व्यापकता का पूर्ण सम्मान देकर सम्मानित किया गया है। चन्द्रमा मन का जनक है। यदि जनक ही नहीं तो मन चेष्टाहीन हो जावेंगे। सृष्टि का चलन भ्रष्ट हो जावेगा। **चन्द्रमा मनसो जायताम्।**

जन्म लग्न में, जिस राशि में चन्द्रमा स्थित रहता है, उसे जन्म राशि कहते हैं। अधिकतर, जन्म लग्न और जन्म राशि अलग अलग ही होते हैं। यदा कदा जन्म लग्न में ही चन्द्रमा के होने से जन्म राशि और जन्म लग्न एक ही हो जाते हैं। जन्म लग्न कुण्डली उसके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का लेखा जोखा बताती है, तो चन्द्र कुण्डली उसकी मानसिकता, मनोवृतियों, स्वभाव का सम्पूर्ण दर्शन है। चन्द्रमा से ही उसकी राशि एवं महादशाओं का विस्तार होता है। इसी से उसके जीवन में पत्नी आदि का विचार करते हैं। ३६ गुण विवाह के लिये मिलाने की गुत्थी भी चन्द्रमा के पास इकलौती है।

चन्द्रमा राजा की २७ पत्नियां हैं। ये और कोई नहीं, २७ नक्षत्रों को ही बाल कथाओं में दर्शाया गया है। अन्यथा आप एक ऐसे पतिदेव की कल्पना कीजिये जिसकी प्रत्येक पत्नी उससे खरबों गुना बड़ी हो। वह भी केवल एक नहीं, पूरी २७ पत्नियां। क्या हाल होगा बेचारे पतिदेव का। उससे भी मजेदार बात आपको बताते चलें कि हमारे बहुत से ख्यातिप्राप्त इतिहासकारों ने राजा चन्द्रमा और उसकी पत्नियों के वंश और स्थान भी ढूंढ़ निकाले हैं। उनके पास उनकी वंशावलियां भी है।

पृथ्वी पर उनके राज्य कहां कहां पर थे, इसकी व्यापक खोज भी उन्होंने कर ली है।

एक बार हमसे भी भारी भूल हो गयी थी। बहुत पहले की बात है। जबलपुर विश्वविद्यालय में एक श्रोता ने प्रश्न किया " स्वामी जी ! क्या वेद में इतिहास है ?"

अपनी सहज मनोवृति के अनुकूल कह दिया, " आत्मा की ना तो इति है तथा ना ही हास है। फिर इतिहास कैसे होगा ? आत्मज्ञान के ग्रन्थ वेद हैं। "

कह तो गये हम। बाद मे ध्यान हुआ कि जो मंच की अध्यक्षता कर रहे हैं, उन्होंने वेद में इतिहास पर नाना ग्रन्थ लिख रखें हैं। वे हमारे अभिन्न ही नहीं, आत्मस्थ मित्र भी थे। हमें प्रश्नकर्त्ता ने जानबूझकर फंसाया था। बाद में हमारे मित्र देवता ने कहा, " आप भी ''''' जी की तरह
फिगरेटिव हैं। आज भी मैं उनके शब्दों को भूला नहीं हूं। एकान्त के क्षणों में अपने भीतर टटोलने लगता हूं, " क्या सचमुच फिगरेटिव हूँ ?" स्वयं को जान पाना इतना आसान भी नहीं होता।

चन्द्र राशि से जिन विषयों का विशेष विचार होता है, वे इस प्रकार हैं :—

१. नक्षत्र एवं नक्षत्र चरण। २७ नक्षत्र हैं। प्रत्येक के ४ चरण हैं। कुल १०८ चरण।
२. नाड़ी। आद्या, मध्या, अन्त्या। ये तीन नाड़ी हैं।
३. योनि। अश्व, गज, मेष, सर्प, श्वान, मार्जार, मूषक, गो, महिष, व्याघ्र, मृग, वानर, नकुल, सिंह आदि योनियां हैं।
४. गण। देव, मनुष्य, राक्षस। ये तीन गण हैं।

५. वर्ण। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, विप्र। ये चार वर्ण हैं।
६. वश्य। चतुष्पाद, मानव, जलचर, वनचर, कीटक, । वश्य कहलाते हैं।
७. वर्ग। अ ई उ ए –गरूड़ वर्ग। क ख ग घ ङ –मार्जार वर्ग। च छ ज झ ञ – सिंह वर्ग। ट ठ ड ढ ण – श्वान वर्ग। त थ द ध न – सर्प वर्ग। प फ ब भ म – मूषक वर्ग। य र ल व – मृग। श ष स ह – मेढ़ा वर्ग कहलाते हैं।
८. राश्याधिपति। सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरू, शुक्र एवं शनि आदि ग्रहों में जिसकी राशि में चन्द्रमा होता है, राश्याधिपति कहलाते हैं। छाया ग्रह होने के कारण राहु एवं केतु को यह सम्मान नहीं दिया जाता है।

विवाह आदि में वर वधु की कुण्डली द्वारा जीवन के विषय में तथा चन्द्र कुण्डली द्वारा उनके स्वभाव को मिलाने हेतु उपरोक्त गुणों का विचार करते हैं। इसे मेलापक कहते हैं।

जन्म समय में चन्द्रमा जिस नक्षत्र चरण में होता है, उसके सही मूल्यांकन के अनुसार यथा ग्रह की महादशा से आरम्भ लिया जाता है। महर्षि पराशर की विंशोत्तरी दशाओं की चर्चा हम पूर्व में कर चुके हैं। इसी प्रकार उपरान्त काल में अष्टोत्तरी दशाओं का भी चलन हुआ है। ज्योतिष में समय समय पर शोध कार्य होते रहे हैं। भारत में गुलामी तथा आजादी के उपरान्त भी इसे विज्ञान की मान्यता प्रदान नहीं हुई। विश्व के बहुत देशों में, लम्बे काल से इसे शिक्षा में ग्रहण किया गया है। इसमें कोई आश्चर्य भी नहीं होना चाहिये। नक्षत्र विज्ञान और आकाश विज्ञान के बहुत से विषय हैं जिन्हें भारत में मान्यता प्राप्त नहीं है। विश्वविद्यालय सम्भवतः जानते भी नहीं हैं। नेताओं को उसमें कोई रूचि हो भी नहीं सकती। उनका राजनीतिक महत्व कोई खास नहीं है।

यह भी एक सुखद बात है कि श्रीरामचन्द्र का समय आधुनिक काल से अति पूर्व रहा है। अन्यथा आप ही सोचिये किस मुश्किल में फंस गये होते। रावण के द्वारा जानकी जी के अगवा किये जाने को तो संवैधानिक मान्यता मिल जाती, परन्तु उन्हें छुड़ाने में भगवाकरण आड़े आ गया होता। अगवाकरण अमृत है। भगवाकरण अनुचित है।

तिथि :– चन्द्रमा की एक कला को तिथि कहते हैं। सूर्य और चन्द्र अन्तराशों पर इसका मान निकाला जाता है। सूर्य और चन्द्रमा के भ्रमण में प्रतिदिन १२ अंशों का अन्तर होता है। यह अन्तरांश का मध्यम मान है। अमावस्या के उपरान्त प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक की तिथियां शुक्ल पक्ष कहलाती हैं। पूर्णिमा से अमावस पर्यन्त का समय कृष्ण पक्ष कहलाता है। ज्योतिषशास्त्र में तिथियों की गणना शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होती है। तिथियों के स्वामी भी अलग अलग होते हैं। यथा :– प्रतिपदा का अग्नि, द्वितीया का ब्रह्मा, तृतीया की गौरी, चतुर्थी के गणेश, पंचमी के शेषनाग, षष्ठी के कार्तिकेय, सप्तमी के सूर्य, अष्टमी के शिव, नवमी की दुर्गा, दशमी का काल, एकादशी के विश्वेदेव, द्वादशी के विष्णु, त्रयोदशी का काम, चतुर्दशी के शिव, पूर्णमासी का चन्द्रमा, अमावस के पितर हैं। तिथियों के विषय में इनका विचार शुभ अथवा अशुभ के हित में किया जाता है।

अमावस्या के भी तीन भेद इस प्रकार किये गये हैं, सिनीवाली, दर्श और कुहु। प्रातः काल से लेकर रात्रि तक रहने वाली अमावस्या को सिनीवाली कहते हैं। चतुर्दशी से विद्ध को दर्श तथा प्रतिपदा से युक्त अमावस्या को कुहु कहते हैं।

स्पष्ट है कि भारतीय ज्योतिष में चन्द्रमा को विशिष्ट महत्व दिया गया है। सूर्य और चन्द्रमा समान रूप से सम्मानित हुए हैं।

जिस राशि में सूर्योदय होता है, वही प्रातःकाल की राशि स्थूल रूप से जानी जाती है। प्रातः काल में जन्मने वाले शिशु के लग्न में सूर्य लगभग रहता है। सूर्योदय से ६० घड़ी अथवा २४ घन्टे में १२ राशियों का संचार हो जाता है। यह राशियां एक ही क्रम के अनुसार लगभग २ घंटे के अन्तराल से आगे बढ़ती रहती हैं। यथाः– मेष राशि में सूर्योदय होने के बाद वृष, मिथुन, कर्क आदि राशियां क्रमवार समय के साथ चलेंगी। जिस समय बालक का जन्म होगा उस समय की राशि बालक की जन्मकुण्डली की जन्म राशि कहलायेगी। जिस राशि में चन्द्रमा होगा उसे चन्द्रराशि अथवा नाम राशि कहते हैं। बालक के नाम का पहला अक्षर, चन्द्रमा जिस नक्षत्र चरण में होगा, उसके द्वारा निश्चित किया जायेगा। नक्षत्र एवं उनके चार चरण के क्रम से अक्षर ज्ञान करें।

१. अश्विनी – चू चे चो ला। २. भरणी – ली लु ले लो। ३. कृतिका – अ इ उ ए। ४. रोहिणी – ओ वा वी वू। ५. मृगशिरा – वे वो क की। ६. आर्द्रा – कू घ ङ छ। ७. पुर्नवसु – के को हा ही। ८. पुष्य – हू हे हो डा। ६. आश्लेषा – डी डू डे डो। १०. मघा – मा मी मू मे। ११. पूर्वा फाल्गुनी – मो टा टी टू। १२. उत्तरा फाल्गुनि – टे टो पा पी। १३. हस्त – पू ष ण ठ। १४. चित्रा – पे पो रा री। १५. स्वाती – रू रे रो ता। १६. विशाखा – ती तू ते तो। १७. अनुराधा – ना नी नू ने। १८. ज्येष्ठा – नो या यी यू। १६. मूला – ये यो भा भी। २०. पूर्वाषाढ़ा – भू धा फा ढा। २१. उत्तरा षाढ़ा – भे भो जा जी। २२. श्रवण – खी खू खे खो। २३. धनिष्ठा – गा गी गू गे। २४. शतविषा – गो सा सी सू।

२५. पूर्वाभाद्रपद – से सो दा दी। २६. उत्तराभाद्रपद – दू थ झ ञ। २७. रेवती – दे दो चा ची।

इस प्रकार जातक के जिस भी राशि नक्षत्र चरण में जन्म समय में चन्द्रमा स्थित होता है, उसी अक्षर से उसके नाम का संचार होता है। इसे राशि नाम कहते हैं। अक्षर के नाम से ज्योतिर्विद्ध जान लेता है कि पृच्छक का जन्म समय का चन्द्रमा कहां पर था। इससे उसके स्वभाव आदि का बहुत कुछ भान पूर्व ही हो जाता है।

जन्म लग्न एवं दशम लग्न सारिणी के सहयोग से जन्म लग्न को ज्योतिषी सूक्ष्म एवं सटीक बनाने के लिये चलित चक्र का साधन करता है। प्रत्येक राशि ३० अंश की होती है। पत्रिका में तो बहुत थोड़े से स्थान में अंकित रहती है, परन्तु आकाश में इसका विस्तार असंख्य खरब मील से भी अधिक हो सकता है। ज्योतिषी को यह पता करना होता है कि जन्म समय में लग्न उस राशि के कितने अंश, कला, विकला पर स्थित था। उसी प्रकार बाकी ११ घर, लग्न के अतिरिक्त, कितने अंश, कला और विकला पर स्थित थे। उनके घरों के संधि स्थल, किस राशि में, कितने अंश, कला विकला पर स्थित थे। इसके बाद प्रत्येक ग्रह को उसके राशि, अंश, कला, विकला के आधार पर चलित कुण्डली में स्थापित करता है। यह ही मूल जन्म कुण्डली है। एक ही राशि में जन्मे बच्चों के स्थूल जन्म लग्न भले ही एक हों परन्तु उनके चलित चक्र कुण्डली में समय और स्थान के भेद से अन्तर हो जाता है। साधारण व्यक्ति, जो ज्योतिष के विषय में कम अथवा नहीं जानता है, उसके मन में अक्सर यह सन्देह होते हैं कि एक ही समय पर जन्में दुनियां भर में बच्चों का एक ही भविष्य कैसे हो सकता है ? चलित के बिना कोई भी फलित अधूरा होने के साथ ही भ्रांतिपूर्ण अथवा गलत हो सकता है।

चलित के उपरान्त होरा कुण्डली, द्रेष्काण, सप्तमांश, नवमांश, दशमांश, द्वादशांश, षोडशांश, त्रिशांश और षष्ठयांश आदि कुण्डली बनाकर ग्रहों के सूक्ष्म प्रभाव को जानने के साधन करता है। ग्रहों के फल को सूक्ष्म और सही रूप से जानने के लिये ग्रहों की महादशाओं का विधान करता है। महादशाओं के सूक्ष्म साधन के हित में अन्तर तथा प्रत्यन्तर दशाओं को भी स्पष्ट करना परमावश्यक है। इतना सब करने के उपरान्त, जिस समय का भविष्यफल उसे बताना होता है, उस समय के गोचर का भी सूक्ष्म साधन करना उसके लिये बहुत जरूरी है। इसके उपरान्त ही वह भविष्य फल को सुनाता है। प्राचीन काल में समय, लग्न सारिणी, पंचांग, स्थान शुद्धि, आदि सबकुछ ज्योतिषी को स्वयं ही करना पड़ता था। आधुनिक काल में यह सब कुछ करने की जरूरत नहीं होती है। पत्रे छपे छपाये मिल जाते हैं। स्थानीय समय और घड़ी के समय को आप आसानी से शुद्ध कर सकते हैं। बाकी गणित के लिये भी "लाग चार्ट " पत्रों में सर्वत्र मिल जाते हैं। कम्प्युटर और नई तकनीक के द्वारा सब कुछ बिना श्रम के शीघ्र ही सम्पन्न हो जाता है। फिर भी ज्योतिष इतना सटीक क्यों नहीं हो पाता ? इसका उत्तर हमारा अज्ञान, आस्था का अभाव, जीवन मूल्यों की मान्यताओं का विपरीत होना तथा थोड़े से परिश्रम में अधिक लाभ कमाने की मनोवृति भी हो सकती है। ज्योतिष में इष्ट का अत्याधिक महत्व है। इष्ट काल के बिना लग्न नहीं बन सकती, तो इष्ट निष्ठा के बिना ज्योतिष और भविष्य का ज्ञान भी सम्भव नहीं हो सकता। ऐसा शास्त्रकारों का मत आदि काल से रहा है।

अभी हम ज्योतिष से परिचित भर हो रहे हैं। सूर्य और चन्द्रमा के विशेष महत्व को जानने के प्रयास में हैं। सूर्य जगत की आत्मा है। ऐसा ज्योतिष ही नहीं, ज्योतिर्वेद तथा सभी धर्म ग्रन्थों ने माना है। सूर्य क्या है ? कैसा है ? उसकी कार्यप्रणाली क्या है ? विभिन्न ग्रहों तथा पृथ्वी पर उसका योगदान क्या है ?

• सूर्य !

क्या सूर्य आग का जलता गोला भर है, जो कभी ठन्डा होकर अनन्त में विलीन हो जायेगा ? सूर्य ग्रह है, नक्षत्र है, तारा है अथवा कुछ और ऐसा, जिसे जानना बाकी है ? क्या सूर्य धरती को उष्मा प्रदान करता है ? कैसे ? क्या सूर्य से गर्मी पृथ्वी पर आती है, अथवा आ सकती है ? सूर्य का मानव शरीर, मस्तिष्क एवं जीवन पर क्या और कैसा प्रभाव होता है ? ज्योतिष विज्ञान में सूर्य का महत्व क्या है और कैसे है ?

पाश्चात्य खगोलविद्धों, वैज्ञानिकों तथा धर्माचार्यों का मत है कि सूर्य आग का जलता हुआ गोला है। उसमें ६ हजार डिग्री सेलसियस अथवा उससे भी अधिक गर्मी है। पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों को भी सूर्य से ही गर्मी प्राप्त होती है। सूर्य पृथ्वी से ९ करोड़, ८४ लाख मील दूर है। पृथ्वी और चन्द्रमा दोनो ही सूरज का हिस्सा थे। एक भारी विस्फोट के उपरान्त एक आग का गोला सूर्य से छिटक कर अलग हो गया। फिर इस गोले में भी एक विस्फोट हुआ। इसका एक टुकड़ा इससे अलग होकर, समय के साथ चन्द्रमा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जो आज भी पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है। पृथ्वी आग का जलता हुआ गोला थी। समय के साथ इसकी परतें ठन्डी पड़ने लगीं। पपड़ी आने लगी।

ठन्डी हो रही पृथ्वी की ऊपरी पर्तो पर भाप जमने लगी। यह भाप कहां से आयी ? कोई स्पष्ट उत्तर पाश्चात्य विज्ञान जगत के पास नहीं है। ठन्डी होती भाप से इतना पानी बना जो पृथ्वी से दस से बीस गुना अधिक था। इतना पानी कहां से आया ? पृथ्वी से कई गुना अधिक ? क्या यह भी सूर्य पर इतने भारी तापमान में भी भाप रह सकी ? आसानी से समझ में आने वाली बात नहीं है। जिस तापमान

की कल्पना हम सूर्य की ऊपरी सतह पर करते हैं, उसमें पदार्थ स्थूल, द्रव अथवा गैस या भाप रह ही नहीं सकती। अवयवों का विकिरण सूक्ष्म ब्रह्म **एटम** में हो जाता है। ऐसी अवस्था में पृथ्वी और चन्द्रमा में ढलने की कल्पना किसी मान्य विज्ञान के सिद्धान्त से गले नहीं उतरती। पानी की उत्पति का रहस्य आज भी बना हुआ है। धरती पर निरन्तर घट रहे जल की चिन्ता ने विज्ञान जगत की नींद उड़ा कर रख दी है। जल को कैसे पुनः बनाकर पृथ्वी को महाविनाश से बचाया जाये, इसपर सारे विश्व में शोध हो रहे हैं। आणविक बम तो बना सकते हैं, परन्तु पानी, नहीं। जब तक हम पानी बनाना सीख नहीं लेते, किसी अन्य ग्रह पर हमारी दस्तक नहीं हो सकती।

बहरहाल, भाप धरती पर जमने लगी। उसमें केमीकल रियेक्शन (कोई नहीं जानता, कैसे) होने लगे। इससे लम्बे समय के उपरान्त एक कोशीय जीव, ऐमीबा और बैक्टीरिया उत्पन्न होने लगे। यही हम सबके पूर्वज हैं। इन्ही से पेड़ पौधे, वनस्पतियां और सभी प्रकार के जीवधारी, पशु, पक्षी, जलचर, मनुष्य आदि लम्बी काल की प्रक्रियाओं में उत्पन्न हुए। आदमी का पूर्वज बैक्टीरिया है।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों के मतानुसार सूर्य एक आग का जलता हुआ गोला है। अब कुछ वैज्ञानिक सूर्य को एक तारा मानते हैं। कुछ अभी भी उसे ग्रह ही मानते हैं। सूरज धरती पर गर्मी, ताप भेजता है। यह ताप ६ करोड़ मील से अधिक क्षीरसागर को पार कर धरती पर पहुंचता है। सम्पूर्ण क्षीरसागर का तापमान हिमांक से ७५ डिग्री से २७५ डिग्री नीचे है। इतनी ठन्डी अवस्था को ६ करोड़ मील का सफर तय करके, गर्मी पृथ्वी तक आती है। फिर भी गर्म बनी रहती है।

ज्योतिर्वेद के मत इससे भिन्न है। उनके अनुसार सूर्य किसी को कुछ नहीं देता है। सूर्य एक महाग्रह अथवा छोटे तारे के जैसा है। सूर्य के

पास अपनी पृथ्वी भी है। इसे द्यावा पृथ्वी की संज्ञा वेद में प्राप्त है। सूर्य का गुरूत्वाकर्षण अथवा माया पृथ्वी से कई लाख गुना अधिक हैं। इसी के कारण परिवार के सारे ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं। सूर्य का सघन माया क्षेत्र २० से ८० लाख मील तक सूर्य को हर ओर से घेरे हुए है। इसे वेद में रूद्रवलय की संज्ञा प्राप्त है। इस सघन क्षेत्र को पार कर पाना किसी के भी लिये सहज नहीं है। सूर्य से कुछ भी इसे पार कर बाहर नहीं आ सकता। उसीप्रकार, कुछ भी बाहर से सूर्य के भीतर नहीं जा सकता। रूद्रवलय अभेद कवच की भान्ति सूर्य को आवागमन से बचाये रहता हैं।

सूर्य के भारी गुरूत्वाकर्षण अथवा माया के आकर्षण में खिंच कर भारी उल्कापिण्ड, धूम्रकेतु, गैस के आवारा बादल, निरन्तर इस रूद्रवलय में आते रहते हैं। यहां पर इनकी महाप्रलय हो जाती है। यह सूक्ष्म ब्रह्म बिन्दुओं में विसर्जित होते विध्वंस की ठोकर के साथ आकाश में किरणों के झुण्ड बन कर हर ओर भागने लगते हैं। यही प्रकाश है जिसे हम अपनी आंखों से रोज देखते हैं। इसे सूर्य ने नहीं, रूद्रवलय ने प्रदान किया है। इसको देने वाले उल्कापिण्ड, धूम्रकेतु, अथवा गैस के बादल हैं, ना कि सूर्य।

सूर्य अपने रूद्रवलय के सहित अपनी धुरी पर सुदर्शन चक्र की भांति तीव्रगति से भ्रमण करता है। इसी के कारण आकाश में लहरें उत्पन्न होती हैं। इन्हीं लहरों के कारण सूर्य परिवार के ग्रह गतिशील होते सूर्य की परिक्रमा तथा धुरिभ्रमण करने लगते हैं। सूर्य के रूद्रवलय से निकलते किरणों के समूह भी आकाश में परिक्रमावत आगे बढ़ते, बीच में पड़ने वाले उल्कापिण्डों तथा ग्रहों को घुमाते रहते हैं। इसी से पृथ्वी पर जीवन गतिमान होता है। यहां तक कि गर्भ का शिशु भी इस प्रभाव से अछूता नहीं रहता। मानव मस्तिष्क भी इसी के कारण गतिमान होता है। विचारों के झंझावात उसके मन में घुमड़ते रहते हैं।

क्या सूर्य ने गर्मी नहीं दी ? तो क्या गर्मी हमें रूद्रवलय से प्राप्त हुई ? जी नहीं ! इनमें किसी ने हमें गर्मी प्रदान नहीं की। सब खेल माया का है। क्षीरसागर के क्षेत्र को गर्मी पार कर ही नहीं सकती। तब, फिर गर्मी आयी कहां से ?

रूद्रवलय में विसर्जित हो गये सूक्ष्म ब्रह्म जब तीव्रता से किसी ग्रह की माया में प्रवेश करते हैं, तो वे माया के प्रभाव से विक्षिप्त होने लगते हैं। क्षीरसागर से विपरीत, उन्हें यहां पर माया के आतंक को झेलना पड़ता है। माया उनके अस्तित्व की चुनौती बन जाती है। माया को निरस्त्र करने के लिये वे संघर्षरत हो जाते हैं। इसी संघर्ष से ऊर्जा की उत्पति होती है। हमें लगता है कि सूर्य से गर्मी आयी। सूर्य से सूक्ष्म ब्रह्म अथवा एटम आये, ना कि गर्मी।

माया से संघर्ष करते सूक्ष्म ब्रह्म शीघ्रता से मायारहित क्षेत्र की ओर शरण के लिये भागते हैं। यह क्षेत्र किसी पेड़ अथवा पौधे का हो सकता है। किसी जीवधारी के शरीर में शरण पा सकते हैं। अन्यथा उन्हें आकाश में शरण के लिये भागना पड़ता है। इसी प्रक्रिया से धरती पर जीवन का खेल निर्बाध गति से चलता रहता है। नित नये पेड़, पौधे, वनस्पतियां, नाना जीवधारी, नयी ऊर्जा, नई संतति पाते हैं। उनके वंश निरन्तर बने रहते हैं। ये किरणों के समूह, निरन्तर धरा को वसुंधरा बनाये रखते हैं।

यत पिण्डे ! तत् ब्रह्माण्डे !!

ज्योतिर्वेद के सूत्र से भी इसे स्पष्ट करते चलें। सूर्य जगत आत्मा है। जैसे कि आपके शरीर में भी आत्मा की कल्पना की व्यवस्था है। आत्मा अमर, सर्वशक्तिमान, परमात्मा का सूक्ष्म स्वरूप है। क्या आत्मा

शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है ? गर्मी देता है ? जीवन की रक्षा करता है ? गर्भ में शिशु की संरचना एवं रक्षा करता है ? माता को शिशु के हित में दूध से वरद करता है ? यदि आत्मा नहीं करता तो फिर कौन करता है ? माता पिता को तो कुछ भी मालूम नहीं। वे स्वयं में नितान्त अनभिज्ञ हैं। कौन करता है, यह सब ?

आप आत्मा के स्थान पर कह सकते हैं, कुदरत, नेचर ! आपसे कोई मतभेद नहीं करूंगा। कुदरत को समझने, जानने का समीकरण ही तो आत्मा, ईश्वर, खुदा अथवा गाड है। सूर्य के समान आत्मा की कल्पना ने ही सूर्य को जगत आत्मा की संज्ञा प्रदान की है। आप कहेंगे कि आत्मा ने ही सबकुछ किया है। जीव तो अनभिज्ञ है। प्रश्न उठेगा आत्मा ने कैसे किया है ? क्या अपने से कुछ निकाल कर दिया है ? नहीं ! शक्ति के लिये जल भोजन, सन्तान के लिये यथा कर्म तो दम्पति को स्वयं करने पड़ते हैं। आत्मा उनके द्वारा किये गये यथा धर्म को पूर्णता प्रदान करता है। शरीर के लिये भोजन आवश्यक है। आत्मा के रहते भी भोजन के बिना शरीर का क्षय होने लगता है। यह भी सत्य है कि आत्मा ही शबरी का राम बन भोजन को यथा शक्ति, ऊर्जा, संतति में प्रकट करता है।

ठीक ! इसी प्रकार जगत आत्मा सूर्य को भी जानना चाहिये। जो भोजन उल्का, धूम्रकेतु, अथवा गैस के बादलों से सूर्य पाता है, उसे जगत के हित में जगत आत्मा यथा लौटाता है। जैसे शरीर में आत्मा को भोजन की जरूरत नहीं होती, उसी प्रकार सूर्य को भी ऊर्जा की जरूरत नही होती। सूर्य को आत्मा की भांति अमर कहा गया है। यूं तो जिस सूक्ष्म तत्व से सचराचर निर्मित है, अमर है। प्रकृति सनातन है। इसलिये इसके नियम भी अपरिवर्तनीय, सनातन हैं। जैसे शरीर में आत्मा, वैसे ही जगत आत्मा। यत पिण्डे ! तत् ब्रह्माण्डे !!

सूर्य की किरणें सागर से जल को भाप बनाकर बादलों को जन्मती हैं। सागर का जल पवित्र होकर जीवन को प्रकट करता है। उसी प्रकार आत्मा तप के द्वारा जीव को प्रकट करता अमर राह पर ले जाता है। सनातन धर्म ने एक ग्रन्थ को ही धर्म ग्रन्थ, मूल पाठ, की संज्ञा प्रदान की है। शेष सभी ग्रन्थों को मूल पाठ के भाष्य ग्रन्थ माना है। वह ग्रन्थ प्रकृति है। आत्मा ही जिसका लेखक है। प्रकृति को ही धर्म की कसौटी माना गया है।

सूर्य से आने वाले सूक्ष्म ब्रह्म, जो धरती पर क्षीरसागर नहीं पाते हैं, आकाश की ओर भाग जाते हैं। इनमें बहुत से चन्द्रमा की माया में प्रवेश कर जाते हैं। जहां माया से भेंट होते ही इन्हें उल्टे पांव भागना पड़ता है। पुनः, इनमें कुछ भटक कर पृथ्वी की ओर आ जाते हैं। परन्तु विध्वंस का धक्का न होने के कारण, पृथ्वी की माया की ऊपरी परतों से छिटककर भाग खड़े होते हैं। धरती की सतह तक नहीं पहुंच पाते। इसी कारण हमें चन्द्रमा की रौशनी में शीतलता का आभास होता है। सूक्ष्म बह्म की चमक तो दिखी, परन्तु माया से संघर्ष नहीं होने के कारण गर्मी नहीं लगी। हमने समझा चन्द्रमा में शीतलता है। सब खेल माया का है।

आज से लगभग तीन दशक पूर्व तक पाश्चात्य विज्ञान, चन्द्रमा पर बर्फ के पर्वतों की कल्पना सजाये बैठा था। उनके मत से बर्फ के कारण रौशनी ठन्डी थी। यानि बर्फ की ठन्डक लाखों मील के क्षीर सागर को पार करके धरती पर आ रही थी। एक वैज्ञानिक महोदय ने तो घोषणा कर दी थी कि चन्द्रमा पर हीरे ही हीरे हैं। जब आदमी चन्द्रमा पर उतरेगा तो कमर तक हीरों में दब जायेगा। समय ने दिखा दिया, ऐसा कुछ भी नहीं था। बस माया के भ्रम का ही खेल है।

ज्योतिष, सूर्य के प्रभाव को मानव जीवन, उसके मस्तिष्क, उसके जीवन के विभिन्न निर्णयों पर होने वाले प्रभाव, उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव से आने वाले परिवर्तन, उसकी सोच समझ पर पड़ने वाले प्रभाव के साथ ही उसके भविष्य की सम्भावनाओं पर विचार करता है। ज्योतिष महाविज्ञान है। इस विज्ञान को जानने वाला व्यक्ति उसके भविष्य के निर्णयों का आभास लेकर, पहले से ही सावधानी पूर्वक उपचार कर सकता है। इसीलिये ज्योतिष को राज्य सत्ता में विशेष स्थान प्राप्त था। प्रत्येक व्यक्ति, भले ही ज्योतिषी न बने, ज्योतिष को व्यवसाय न बनाये, परन्तु भौतिक एवं आध्यात्मिक हितों की रक्षा के लिये, इस विज्ञान में अवश्य पारंगत होना चाहता था।

सूर्य की उत्पति का वर्णन भी हमें आदि ग्रन्थों में मिलता है। यज्ञ के द्वारा अनन्त क्षीर सागर में नक्षत्र समूहों के आंगन में, उनकी मायाओं के प्रभाव के बाहर की सीमा रक्षा क्षेत्र में, यज्ञ का आवाहन होता है। एक भंवर, कुछ ब्लैकहोल के जैसा दिखने वाला, मायाओं के प्रभाव से प्रेरित होकर दूर दूर तक फैलता चला जाता है। यह कुछ जल में प्रकट हो गये भंवर के जैसा ही होता है, जिसमें आने पर नाव, जहाज, आदमी अदृश्य हो जाते हैं। उनका पता ही नहीं चलता। इसी प्रकार इस भंवर का मुख, अशान्त क्षीर सागर में फैलता चला जाता है, तथा इसका दूसरा सिरा, पूंछ का भाग, यज्ञ क्षेत्र में आकर खुल जाता है। आप एक विशाल काय अजगर अथवा सुरंग की कल्पना कर सकते हैं। अशांत क्षेत्र से उल्का पिण्डों, धूम्रकेतुओं के टुकड़ों, अथवा जो भी पदार्थ मिले यह उन्हें तीव्र गति से निगलता चला जाता है। इसमें प्रवेश करती वस्तुओं की गति प्रकाश की गति से कहीं अधिक तीव्र होती है। इसी कारण दूर से यह कृष्ण छिद्र अथवा ब्लैक होल के जैसा दिखता है। इससे टकराकर प्रकाश भी इसमें समा जाता है, लौटटता तो कदापि नहीं है। इसीलिये इसे दूर से देखने वाले को अन्धा

कुआं सा दिखाई पड़ता है। इसके मुख को अघासुर मुख कहा गया है। इसकी यही संज्ञा है।

इसके मुख में समाते पदार्थ अरबों खरबों मीलों की तीव्र यात्रा करते, अतिसूक्ष्म ब्रह्म बिन्दुओं में विसर्जित होते, यज्ञ क्षेत्र में इसकी पूंछ से निकल कर, प्रवेश करते रहते हैं। इसी क्षेत्र में इन बिन्दुओं से ब्रह्माण्डों की सृष्टि यज्ञ के द्वारा निरन्तर करोड़ों करोड़ों साल होती रहती है। इसकी चर्चा हमें टुकड़ों में वेदों में मिलती है। इन्हें खोजकर, जोड़कर, पुनः निरूपित करके ही स्पष्ट करना, हमारी विवशता है। इनके प्रमाण हमें पुराणों में संहिताओं में भी मिलते हैं, जिन्हें स्पष्ट करना पड़ता है। मूल विज्ञान का लोप १५ लाख से अधिक वर्ष पूर्व ही हो गया था। इसकी चर्चा हम प्रथम खण्ड में कर चुके हैं। ग्रहों, नक्षत्रों, तारामण्डलों अथवा ग्रहों की उत्पति इसी प्रकार हिरण्य गर्भ में, क्षीर सागर में, बिन्दुओं से ब्रह्माण्डों की होती है। इसी सनातन प्रक्रिया से गर्भ से शिशु, पेड़ से फल उत्पन्न होते हैं। धड़ाकों अथवा एक्सीडेन्ट, दुर्घटना से बच्चे सम्भवतः पाश्चात्य जगत में उत्पन्न होते हों, हमें इसका ज्ञान नहीं है। कल्पना तो बेशक अच्छी ही है। हर लगे न फिटकरी, रंग चोखा !

सूर्य की दहकती भट्ठी, सूर्य पर न होकर, सूर्य से २० लाख मील दूर, सूर्य के प्रत्येक ओर है। इसका क्षेत्रफल २० लाख मील दूर से आरम्भ होकर ८० लाख मील दूर तक फैला हुआ है। इसे रूद्र वलय, कास्मिक आर्क, पशुपताग्नियों का घर, परमाणविक ऊर्जा क्षेत्र, कुछ भी नाम दे सकते हैं। हमें सूर्य नहीं, यह क्षेत्र ही सूर्य के रूप में दिखायी पड़ता है। सूर्य को देख पाना सम्भव नहीं है। इसी तेज के भीतर, सूर्य , आत्मा की भांति ही अदृश्य है। ना तो आत्मा दिखती, ना ही सूरज ! दोनो के होने का आभास भर ही तो है। ज्योतिर्वेद के उपरोक्त सूत्र से भी यही सिद्ध होता है।

पाश्चात्य वैज्ञानिक, उनका अनुकरण भर करने वाले भारतीय वैज्ञानिक, सभी यह देखकर स्तब्ध रह गये कि सूर्य के समीप करोना का आकार छोटा है। परन्तु, दूर जाने पर करोना घटने के स्थान पर बढ़ने लगता है। इसका उनके पास कोई स्पष्ट उत्तर नहीं है।

सूर्य की इस महान भट्ठी में निरन्तर समाने वाले पदार्थ, सूक्ष्मब्रह्म बिन्दुओं में विसर्जित होते, करोना अथवा तेज पुंज के रूप में, सूर्य से दूर भागते हैं। इन्हें मार्ग में खिंचे चले आ रहे अन्य पदार्थों का सामना करना पड़ता है। वे भी इनके तीव्र प्रकाश एवं ऊष्मा से प्रकाशित हो उठते हैं। इससे करोना का प्रभाव अधिक खिल उठता है। इन कणो के साथ ही हल्के पदार्थ भी सूर्य से विपरीत इनके साथ भागने लगते हैं। कुछ दूर जाने पर ठन्डे होकर पुनः सूर्य की भट्ठी में आ समाते हैं। इन्ही से यह भट्ठी निरन्तर प्रज्जवलित रहती है। इसे ही यज्ञ की संज्ञा प्राप्त है। यज्ञ से ही सृष्टि होती है। धरती पर जीवन का प्रत्येक तन्तु, जीवधारी और वनस्पतियां इसी यज्ञ पर निर्भर है। यज्ञ नहीं, तो जीवन कहां ?

आज से कोई तीन दशक से कुछ पहले की घटना याद आ गयी है। श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी और शिवसिंह सरोज जी पहली बार खोजते हुए आश्रम में पधारे। उनके हाथ में इस सन्यासी का एक ग्रन्थ था, जिसको पढ़ने के उपरान्त की उत्कन्ठा उन्हें यहां तक खींच लायी थी। हजारी प्रसाद जी जितने सुन्दर थे, उनकी वाणी, विवेक उससे भी कहीं अधिक मनोहारी और सरस थे। कोई भी उनसे प्रभावित हुए बिना रह ही नहीं सकता था। उनके कुछ वाक्य जिन्हें कभी नहीं भुला पाया, " आपके ग्रन्थ को पढ़ने के उपरान्त आपसे मिलने की उत्कण्ठा से अपने को रोक नहीं पाया। मुझे सदा लगता रहा है कि श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण की लीला कथाओं में कुछ और भी है। जिसे हम खोज

नहीं पाये हैं।..... यज्ञ को लेकर बापु (राष्ट्रपिता महात्मा गांधी) अक्सर कहते थे। काश ! मुझे कोई यज्ञ के सही रूप को बता सकता, जिससे सृष्टि होती है। इस हवन यज्ञ के पीछे के रहस्य कोई, क्यों नहीं जानता ! गीता में जिस यज्ञ की चर्चा है, वह क्या है ?..."

उनके साथ लखनऊ यूनिवर्सिटी के हरे कृष्ण अवस्थी भी थे। उनके जाने के बाद भी हजारी प्रसाद जी की महिमामयी छवि मुझसे कभी अलग नहीं हुई। वे मुझे एक अन्तर्भूत महासन्त से दिखे, जो युगों के गम्भीर अन्तरालों को लांघकर वर्तमान में चला आया हो।

कर्मकाण्ड के यज्ञादिक जीवन को यज्ञमय,. लक्ष्यपरक बनाने की महान प्रक्रिया है। इससे तन मन की शुद्धि के साथ ही,, पूर्वजों की अमर स्मृति एवं सचराचर के वेद ज्ञान को स्मरण करने तथा जीवन को आत्मा का लक्ष्य देने की प्रक्रिया है। यदि यह ज्ञान तथा भाव नहीं, तो सबकुछ अपूर्ण है। यज्ञ शब्द का अर्थ सृष्टि ज्ञान ही है। जिसकी चर्चा हम निरन्तर करते आ रहे हैं। जिस प्रकार शरीर में आत्मा का निवास होते हुए भी, आत्मा का दर्शन सहज सम्भव नहीं है। केवल शरीर ही दिखता है। जिस प्रकार हवा में उड़ती हुई पतंग तो दिखती है, परन्तु जिस डोर के सहारे उड़ रही है, वह डोर सहज ही दृष्टिगोचर नहीं होती। उसी प्रकार यज्ञ की आत्मा को देख, समझ पाना इतना सहज नहीं है। वाहय यज्ञ, दिखता हुआ शरीर अथवा उड़ती हुई पतंग भर है। यज्ञ की आत्मा, शरीर की आत्मा की भांति ही अदृश्य है। इसकी चर्चा हम निरन्तर करते रहेंगे।

सूर्य आत्मा की भांति ही अपनी किरणों के प्रसार से भूमण्डल पर जीवन को गति, स्थायित्व प्रदान करता है। परन्तु आत्मा की भांति ही स्वयं से, नहीं कुछ देता हुआ, जीवन का संचार करता है। आत्मा के

बिना जीवन की कल्पना नहीं हो सकती, तो सूर्य के बिना भी जीवन की कल्पना नहीं हो सकती।

सूर्य, तीव्र गति से घूमता हुआ, अपने गुरूत्वाकर्षण से बंधे ग्रहों को, निरन्तर उनकी धुरी पर, अपनी घूमती हुई किरणों के प्रभाव से, निरन्तर घुमाता रहता है। इसी से जीवन, विचारों, कल्पनाओं को गति मिलती है। इसी से शरीर के अंग एवं अवयव गतिशीलता पाते हैं।

सूर्य, अपने गुरूत्वाकर्षण से बान्धे हुए, सम्पूर्ण परिवार के ग्रहों को, आकाशगंगाओं की परिक्रमाओं में, तीव्र गति से अपने साथ निरन्तर दौड़ाता रहता है। इसकी एक परिक्रमा, पृथ्वी के ४३,२०,००० वर्ष है। सूर्य की गति सभी ग्रहों से अत्याधिक तीव्र है।

सारे ग्रह बिना किसी डोर के, माया की डोर में बंधे, सूर्य की परिक्रमा तो करते ही हैं, सूर्य के साथ, सूर्य की गति से आकाशगंगाओं की भी परिक्रमा, अनन्तकाल से कर रहे है। जब ये भारी भरकम ग्रह, अनन्त काल से सूर्य की माया की अदृश्य डोर से, स्वयं को अलग नहीं कर पाये, तो कौन समझदार कह सकता है कि इन ग्रहों का जीवन पर प्रभाव हो ही नहीं सकता ? ज्योतिष एक महाविज्ञान नहीं है ? बड़े नेताओं की बचकानी बातें, कितनी सही, कितनी औचित्यपूर्ण हैं ?

सृष्टि के लिये यज्ञ, यज्ञ के लिये तीन अवस्थायें, तीन प्रक्रिया अथवा शक्तियां परमावश्यक है। यही ॐ के तीन अक्षर, यथा अ् उ् म हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं। उत्पति, धारण + सृष्टि, पालन + संहार, मोक्ष। तीनों के बिना यज्ञ की कल्पना कदापि नहीं हो सकती। (जब भी यज्ञ की चर्चा करूं, कृपया आत्म सदृश्य मूल यज्ञ की कल्पना साकार करें, इसका अर्थ वाहय आडम्बर से कदापि न जोड़ें)।

हलवाई का लड्डु अथवा मिठाई बनाना, यज्ञ कतई नहीं है। उसी प्रकार क्लोनिंग भी यज्ञ नहीं है। हवाईजहाज बनाना भी यज्ञ नहीं है। फिर यज्ञ क्या है ?

सूक्ष्मब्रह्म परमाणुओं से की गयी प्रत्येक सृष्टि यज्ञ है। परमाणुओं को एकत्र करके एक लोहे की कील बना लेना तो यज्ञ कहला सकता है, परन्तु प्रकृति द्वारा उत्पन्न पदार्थ से बना कोई भी आविष्कार, यज्ञ की श्रेणी में कदापि नहीं आयेगा। परमाणुओं को जोड़कर जीन बना लेना यज्ञ है। परन्तु बने बनाये जीन और बायोमास से क्लोन बनाना, यज्ञ कदापि नहीं है। जब हम परमाणुओं से जीन और बायोमास बनाकर क्लोन बना लेंगे, तो उसे हम निश्चय ही यज्ञ की संज्ञा प्रदान करेंगे। अभी तो आत्मा ही यज्ञ का अधिष्ठित देव है। गुलाब की एक पंखुड़ी, परमाणुओं के संयोग से, बना पाना विश्व विज्ञान के लिये सम्भव नहीं है। आत्मा ही यज्ञ के द्वारा नित नई सृष्टि रचता है। उपन्यास के दूसरे खण्ड में हमने इसकी विस्तृत चर्चा की है। ऋग्वेद के प्रथम ऋषि मधुच्छन्दा के सम्पूर्ण सूक्तों को अर्थ सहित जाना है।

सूर्य आत्मा की भांति ही प्रलयंकर रूद्र बन, पदार्थों को सूक्ष्म ब्रह्म परमाणुओं में विसर्जित एवं यज्ञ हेतु, पवित्र करता है। प्रकृति एवं आत्मा इन्हीं ब्रह्म परमाणुओं से, पेड़, पौधों, जीवधारियों के शरीरों में यज्ञ के द्वारा नूतन सृष्टि को यथा संतति में प्रकट करते हैं। इस प्रक्रिया को यज्ञ कहा गया है। इसी से सचराचर की उत्पति होती है। यज्ञ के लिये माया और क्षीरसागर दोनों अवस्थाओं का होना जरूरी है। माया पदार्थ को सूक्ष्म ब्रह्म परमाणुओं में विसर्जित करने के लिये, तथा क्षीरसागर की अवस्था उन्हें पुनः नूतन सृष्टि में संगठित करने के लिये, अति आवश्यक है। यही नियम सर्वत्र है। इस अदृश्य नित्य खेल को यज्ञ कहते है। इसी से सम्पूर्ण दृश्य मात्र प्रकट होता है। सबकुछ !

सूर्य के चहुं ओर व्याप्त पशुपताग्नियों का रूद्रवलय सूर्य को अभेद बना देता है। इसी रूद्रवलय (Cosmic Arch) से सूर्य ग्रह (द्यावा पृथ्वी) का गुरूत्वाकर्षण अनुपातिक स्थिरता ग्रहण करता है। किसी भी ग्रह के गुरूत्वाकर्षण का सीधा प्रभाव इस द्यावा अर्थात सूर्य की पृथ्वी पर नहीं आ सकता। सभी ग्रहों के गुरूत्वाकर्षण का संतुलन भी रूद्रवलय से ही है, सूर्य से सीधा कुछ भी नहीं है। ग्रहों और सूर्य के मध्य, दोनों को रूद्रवलय से ही संतुलित होना पड़ता है। इस पूरी प्रक्रिया में सूर्य आत्मा की भांति ही अदृश्य है। यदि सूर्य नहीं, तो रूद्रवलय का अस्तित्व कहां ? यदि शरीर नहीं तो जीवन कैसा ? रूद्रवलय ही दिखता हुआ सूर्य का शरीर है। आत्मा के रूप में सूर्य अदृश्य होकर इसमें समाया हुआ है। जैसे शरीर में आत्मा।

प्रथम खण्ड में हम धरती पर जीवन के अवतरण की कथा कर आये हैं। महाभारत में भी इन कथाओं का विस्तार हमें मिलता है। महाराज सगर के ६० हजार यान सूर्य की कपिलाग्नियों में आकर भस्म हो गये थे। सारा खेल इसी रूद्रवलय का था। कथा में सगर के पुत्रों के भस्म होने के बाद, गंगा की धाराओं को धरती पर उतारने के भागीरथ प्रयास की कहानी है। सत्य घटनाओं ने कालान्तर में बाल कथाओं का रूप लिया होगा। बाकी खेल साम्प्रदायिक भ्रमों ने कर दिया। आज भी मानव को, मानव होने के लिये, संकीर्ण साम्प्रदायिकता के नीचे पहले दफन होना पड़ता है। मानवता, यदि आतंकवाद, उग्रवाद, हिंसा, पैशाचिकता को मिटाकर, मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा और निर्भय समाज की कल्पना सजाये, तो उसे साम्प्रदायिक सोच से भीख में आज्ञा लेनी पड़ती है। अन्यथा कहीं ज़ेहाद, तों कही तो अगवा भगवा, कहीं और भी बहुत कुछ झेलना पड़ सकता है। इन्सान् के लिये मयस्सर नहीं, इंसां होना !

जिस प्रकार सूर्य के प्रत्येक ओर रूद्रवलय (Cosmic Arch) है, उसी प्रकार, उससे बहुत कम प्रभाव के वलय, लगभग सभी ग्रहों के प्रत्येक ओर रहते हैं। पृथ्वी को सुदूर आकाश से देखने पर आप ग्रह के स्थान पर वलय को देखेंगे, साथ ही इस भ्रम को पाल लेंगे कि आप पृथ्वी ग्रह का दर्शन कर रहें हैं। यह वलय ग्रह की अवस्था, स्थिति, गुरूत्वाकर्षण के अनुसार ही रंग बदलते, घटते तथा बढ़ते रहते हैं। इन्हें पार कर ग्रह में प्रवेश करना, बहुत आसान नहीं होता। ग्रह में प्रवेश करते उल्कापिण्ड, इनसे टकरा कर जलने लगते हैं। बहुधा भस्मीभूत हो जाते हैं। जबकि इनमें प्रवेश से पूर्व, ये उल्कापिण्ड, हिमशिला से कहीं अधिक ठन्डे होते हैं। सब माया का खेल है। क्षीरसागर, मायारहित क्षेत्र कल्पना से परे ठन्डा है, तो माया का प्रवेश द्वार, धधकती भीषण ज्वाला से भी अति गर्म।

सूर्य का पशुपताग्नियों का क्षेत्र अति विस्तृत है। सूर्य से दूर, लगभग २० लाख मील दूर से आरम्भ होकर, लगभग ८० लाख मील दूर तक फैला हुआ है। जबकि पृथ्वी का वलय क्षेत्र कुछ सौ मील तक ही है। इस क्षेत्र का तापमान भी सूर्य के जैसा ही है। परन्तु क्षेत्र सीमित होने के कारण ही, हमारे स्पेस यात्री, इसे कुछ असहज होकर, पार कर लेते हैं। यदि यह क्षेत्र सूर्य के जितना बड़ा होता, तो इसे पार करना भी इतना ही कठिन हो जाता। जब भी यान इस क्षेत्र को भेद कर पार करते हैं, तो यान का वाहय तापमान किसी प्रकार भी १६०० डिग्री सेंटीग्रेड से कहीं अधिक होना चाहिये।

क्षीरसागर और माया का खेल, सम्पूर्ण सचराचर में, निरन्तर चलता रहता है। जिस प्रकार, शरीर के भीतर क्षीरसागर के साथ ही माया क्षेत्र की कल्पना, सार्थक रूप से कार्यरत है, उसी प्रकार, यह लीला सर्वत्र हो रही है। क्षीरसागर में माया है, माया में क्षीरसागर समाया हुआ है।

अपने शरीर की ओर ध्यान करें। प्रत्येक परमाणु के चहुं ओर क्षीरसागर है। सम्पूर्ण शरीर के अवयव, अंगादिक इसी प्रकार बने हुए हैं। क्षीरसागर के बिना जीवन सम्भव नहीं, तो माया के बिना भी सम्भव नहीं है। जीवन के लिये दोनों अवस्थाओं का होना अति आवश्यक है। दिन और रात्रि की भांति, दोनों, एक दूसरे के पूरक हैं, पहचान हैं। क्षीरसागर की अवस्था में ब्रह्म परमाणु, पदार्थ में जुड़कर नयी सृष्टि को प्रकट करते हैं। माया में पदार्थ को सूक्ष्म परमाणुओं में विसर्जित करने लगते हैं। यज्ञ की अवस्था दोनों ही क्रियाओं में है। यही सृष्टि लीला सर्वत्र विद्यमान है।

इस सम्पूर्ण खेल में ग्रहों की मायाओं का अति विशिष्ट स्थान एवं प्रभाव है। माया के इस खेल में ग्रहों के संयुक्त प्रभाव, निर्णायक प्रभाव डालते हैं। इन्हीं प्रभावों को जानने, नापने, स्पष्ट करने की महाविद्या का नाम ज्योतिष है।

• लग्न, सूर्य और नक्षत्र !

भले लग्न की १२ ही राशियां हों, स्थूल रूप से लग्न के १०८ प्रकार होते हैं। प्रत्येक राशि में ६ प्रकार के अलग लग्न बनते हैं। लग्न जिस किसी नक्षत्र के, जिस चरण में होगा, लग्न पर उसका विशेष प्रभाव पड़ेगा। इससे जातक का सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रभावित होगा। हम लग्न पर विचार करेंगे।

मेष लग्न का प्रथम नक्षत्र, अश्विनी है। इस नक्षत्र के स्वामी, अश्विनी कुमार युगल माने गये हैं। दोनों कुमार देवताओं के राजवैद्य माने गये हैं। संजीवनी विद्या में पारंगत हैं। इनका प्रभाव मेष लग्न के १० अंश तक ही सीमित है। इस नक्षत्र के चारों चरणों का प्रभाव, एक सा होते हुए भी बालक के सौभाग्य और स्वभाव पर अलग प्रकार से प्रभाव डालता है। लग्न, जिस भी चरण में होगा, उसका प्रभाव भी वैसा ही होगा। नव ग्रहों के विचार से, इस नक्षत्र का स्वामी केतु है। यह नक्षत्र गण्डमूल का नक्षत्र कहा गया है। लग्न पर विचार करते समय, ज्योतिषी को इस पर भी गम्भीरता से विचार करना होगा। यदि लग्न, मेष राशि में, अश्विनी नक्षत्र के प्रथम चरण में हो, तो पिता को भारी हो। बालक सुन्दर तथा सुडौल अंगों वाला, मध्यम आकार का हो। हठ, क्रोध विशेष हो।

दूसरे चरण में माता को भारी हो। तीसरे चरण में धन का अपव्यय करने वाला हो। चौथे चरण में सुशील तथा आज्ञाकारी हो। सबका सहयोग करने वाला, जन जन का हितैषी हो। सबका सुख चाहते हुए भी, मिथ्याभिमान, क्रोध करने वाला भी हो। अपने स्वभाव के कारण, अपने किये कराये पर पानी फेरने वाला हो। लग्न के साथ ही यदि

चन्द्रमा भी लग्न के ही अंशों पर हो, तो व्यक्ति नारकीय जीवन जियेगा। स्वजन समाज उसके विपरीत ही रहेंगे। इसी प्रकार सूर्य के रहने पर, उसे सबकुछ होते हुए, भी अकेले ही जीवन नैया को ढोना होगा। एक बियाबान रेगिस्तान की बोझिल जिन्दगी।

यहां एक बात और भी स्पष्ट कर देना चाहूंगा। केवल लग्न से फल कहना, अथवा एक योग को पकड़ कर, फलित बता देने वाला ज्योतिषी, सदा ही भूल करता, अपमानित होता है। सही ढंग मात्र इतना ही है, कि आप सभी, लग्न, नवग्रह, तिथि, वार, मास, पक्ष, महादशा, अन्तर प्रत्यन्तर दशा, गोचर आदि का फल, ढंग से सुव्यस्थित करके लिखते चलें जायें। उन्हें अच्छे अथवा बुरे खानों में बांट दें। यदि आप हस्तरेखा में भी पारंगत हैं, तो निश्चय ही उस पर भी विचार अवश्य करें। यह अति उत्तम है। सब पर विचार करने के उपरान्त अब आप सभी निर्णयों की सूक्ष्म समीक्षा करते हुए, विस्तार को संक्षिप्त करते चलें। इस प्रक्रिया में एक सम्पूर्ण फलित प्रकट होने लगेगा। ग़ल्ती की सम्भावना बहुत ही कम होगी।

इसके साथ ही, अतीत के युगों की, एक अटल अवधारणा की चर्चा अवश्य करना चाहूंगा। इष्ट बिना सब भ्रष्ट है। साधना, तपस्या, निर्लोभ, आत्मसंतोषी व्यक्ति ही सरस्वती का वरद पुत्र हो सकता है। जिसका मन विषयों एवं अतृप्त इच्छाओं का अखाड़ा बन चुका है, उसके लिये ज्योतिष करना अति दुष्कर है। नौ करोड़ से कहीं अधिक योगों के सघन विचार कर सकने की सामर्थ्य के लिये, बहुत ही संयत, शान्त, ठहरे हुए मस्तिष्क का स्वामी होना, अति आवश्यक है।
उपरोक्त राशि चरण के संक्षिप्त विचार के उप़रान्त, इसी मेष राशि में दूसरा नक्षत्र भरणी है। इसके भी चार चरण हैं। इसका स्वामी काल है। ग्रहों की दृष्टि से यह नक्षत्र समूह, आचार्य शुक्र से प्रभावित कहे गये हैं। शुक्र दैत्यों के शुभचिन्तक हैं। द्वैत धर्म में उनकी पूर्ण आस्था

एवं श्रद्धा है। देवताओं से उनका द्वेष है। वे तप, साधना को भौतिक सिद्धि के रूप में ही देखते हैं। इन चरणों में जन्मने वाला जातक, भौतिक उपलब्धियों को सब कुछ मानकर जियेगा। भौतिक जगत ही उसका सब कुछ होगा। अनुभूतियों और आपसी सम्बन्धों को भौतिक उपलब्धियों के उपरान्त ही रखेगा। उसका स्वरूप मनोहारी, बोलने में शिष्ट, आकर्षक होगा। शब्दजाल तथा मृदु आचरण के द्वारा, सबका मन जीतने में समर्थ होगा। इसी भाव में चन्द्रमा अथवा सूर्य के होने पर उसके व्यक्तित्व में निखार आयेगा। राजा के समान पूजित होगा।

मेष राशि के स्वामी मंगल माने गये हैं। जबकि प्रथम नक्षत्र का स्वामी केतु है। यदि मेष राशि में केतु अपने ही नक्षत्र में होगा, तो उसका बल अतुलित होगा। केतु, महाबली होगा। कुण्डली के स्वरूप तथा अन्य ग्रहों की अवस्था के अनुरूप उसका अच्छा अथवा बुरा फल, अति भारी होगा।

मेष राशि के दूसरे नक्षत्र में, यदि शुक्र हो, तो उसका प्रभाव अत्याधिक भारी हो। दूसरा नक्षत्र भरणी है। यह शुक्र का अपना नक्षत्र है। इस नक्षत्र के प्रभाव से शुक्र का प्रभाव, कुण्डली, लग्न तथा ग्रहों के अनुरूप बढ़ जाता है। यह प्रभाव और भी अधिक हो जायेगा, यदि लग्न भी ग्रह के समीप अंशों पर ही हो।

मेष राशि में तीसरे नक्षत्र का एक चरण ही आता है। कृतिका का स्वामी, सूर्य है। यदि लग्न और सूर्य, दोनों ही इस नक्षत्र चरण में आ गये हों, तो एक अत्याधिक विलक्षण बात होगी। इस व्यक्ति के जीवन में भौतिक सुखों का सर्वथा अभाव रहेगा। सब कुछ होते हुए भी, लग्न का सूर्य उसे सभी सुखों से विरक्त रखेगा। लग्न, होरा, त्रिशांश, सप्तमांश, नवमांश आदि सभी लग्नों में सूर्य के लग्न में होने से, सारे भौतिक सुखों से, जातक को दूर ही रहना होगा। अपने ही नक्षत्र तथा

मंगल की राशि अंशों में स्थापित सूर्य, उसे असाधारण राह की ओर ले जाता है। कुण्डली, अन्य ग्रहों के स्थान तथा बलाबल के अनुरूप, वह समाज में अपना अलग ही स्थान बनाता है। इतने अंशों पर आया सूर्य, बहुधा कुण्डली में आत्माकारक का स्थान ही ग्रहण करता है। आत्माकारक के लग्न पर अधिकार कर लेने से, जातक के स्वभाव, सोच और समझ पर असाधारण प्रभाव होता है। उनमें विलक्षणता के साथ ही लकीर से हट कर जीने की भावना अति प्रबल रहती है। वे योगी, तपस्वी, समाज सुधारक भी हो सकते हैं। अन्य ग्रहों के प्रभाव से वे युगों तक जाने वाले क्रूरकर्मा नेता भी हो सकते हैं।

इसी प्रकार वृष राशि के नक्षत्रों का भी विचार, कुण्डलीबद्ध, नक्षत्र चरण सहित करने की परिपाटी वैदिक काल में प्रचिलित है। २७ नक्षत्रों, ६ ग्रहों तथा १२ राशियों का खेल ही, गुरूकुल में ज्योतिष का आरम्भ है। पता नहीं, कब और कैसे, इसका आधुनिक काल में लोप हो गया। यह एक शोध का विषय है। इस समय इसका विस्तार करना विषय के अनुरूप नहीं होगा। यथा समय पर इसका विस्तार करेंगे।

जन्म लग्न, दशम लग्न के विचार से, गणित द्वारा छात्र, दशम लग्न सारिणी के सहयोग से, चलित चक्र कुण्डली का निर्माण करते हैं। इसे ही मूल जन्म लग्न कुण्डली मानने की विशिष्ट परम्परा है। केवल जन्म लग्न से बनी कुण्डली पर कोई विचार नहीं करता है। ऐसा करना अज्ञान माना जाता है। आकाश में प्रत्येक राशि का विस्तार अत्याधिक कल्पनातीत है। ऐसी अवस्था में ग्रह का प्रभाव उसकी सूक्ष्म स्थिति को जाने बिना करना, निरी मूर्खता ही हो सकती है। एक ही राशि में दर्शाये गये ग्रह, सम्भव है, आपस में भान ही न लेते हों। पुनः, उन ग्रहों का राशियों में स्थान ही सिद्ध करेगा, कि जातक के जीवन के किस भाग पर उनका प्रभाव विशेष, एवं कैसा होगा। केवल घर में दिखते ग्रह से विचार करना, समझदारी नहीं होगी।

जन्म लग्न के राशि, अंश, कला, विकला के जैसा ही, सभी १२ राशियों के मूल केन्द्र का ज्ञान, राशि अंश, कला, विकला सहित जानकर ही कुण्डली का सही मूल्यांकन कर सकते हैं। प्रत्येक राशि के आरम्भ तथा समापन का मूल्यांकन भी परमावश्यक है। इस प्रकार १२ राशियों के राशि अंश के साथ ही २४ भाव, राशि के आरम्भ एवं समापन के सूक्ष्म साधन को चलितचक्र कहते हैं। इस प्रकार, चलितचक्र में कुल ३६ लग्न स्पष्ट किये जाते हैं। १२ लग्न राशियों के मध्य भाग, १२ लग्न राशियों का आरम्भ भाग, तथा १२ लग्न राशियों का समापन भाग। इस चलितचक्र के द्वारा ही ग्रहों एवं राशियों की सही अवस्था का पता चलता है।

चलितचक्र के उपरान्त, ज्योतिषी नव ग्रहों को उनके राशि अंश, कला, विकला के अनुरूप, सही स्थान पर, सूक्ष्म साधन द्वरा स्थापित कर देता है। अब जातक का सही लग्न चक्र बन गया। इसे देखने की प्रक्रिया, कुछ इस प्रकार है।

१. सर्व प्रथम राशियों के घरों को स्पष्ट करके लिखें।
२. १२ राशियों के मध्यमान में आने वाले नक्षत्रों को उनके मूल्यांकन सहित लिखें।
३. ग्रहों को अंश, राशि सहित मूल्यांकित करके लिखें।
४. सन्धियों को मूल्यांकित करके लिखें।

अब आप जातक की कुण्डली पर स्थूल रूप से विचार कर सँकते हैं। अच्छा हो कि कारक भाव भी स्पष्ट करके लिख लें, यथा, आत्म कारक, अमात्य कारक आदि। इनसे बहुत मदद मिलती है। अब सबके फलित को अलग अलग लिखते जायें। जो ग्रह मध्य मान के समीप हैं, उनका प्रभाव नक्षत्र के प्रभाव सहित स्पष्ट करें। जो ग्रह सन्धियों में आ गये हैं अथवा सन्धि को पार कर गये हैं, उनका प्रभाव भी यथा

नक्षत्र सहित लिखें। मध्य मान के ग्रहों का जीवन पर सीधा प्रभाव होता है। सन्धियों में गये, अथवा सन्धि को पार कर गये ग्रह का क्षीण प्रभाव जातक पर होता है। सन्धिस्थ ग्रह केवल वाहय आडम्बर मात्र ही बहुधा होते हैं।

उदाहरण के लिये, मान लें कि एक व्यक्ति के ग्रह, लगभग सभी, संधि स्थान पर हैं। यह व्यक्ति अच्छे कुल एवं परिवार में होने का सम्मान पायेगा। लोग इसे धनाडय मानेंगे। समाज में इसकी ऐसी ही प्रतिष्ठा होगी। परन्तु अपने भीतर यह नितान्त खोखला होगा। लोगों को इसके लिये बस भ्रम ही होगा। अभाव का जीवन ही उसका भाग्य बनेगा।

इसी प्रकार ज्ञानी एवं समझदार ज्योतिषी, बिना किसी जल्दबाजी के, फलित को स्पष्ट करके लिखता जाये। निर्मल, शान्त, समर्पित एवं निष्ठायुक्त मन और बुद्धि का स्वामी ही इस विज्ञान में पारंगत हो सकता है।

यदि किसी ज्योतिषी ने, किसी कारण अथवा अकारण, भ्रमवश अथवा कुण्डली के समय का सही निर्धारण न होने के कारण, असत्य भविष्यवाणी कर दी, इसका अर्थ यह कदापि नहीं लिया जाना चाहिये कि ज्योतिष विज्ञान नहीं है। चिकित्सा विज्ञान पर कौन संदेह कर सकता है ? परन्तु वहां भी नित्य भूल होती ही रहती है। तब, आप में से कोई क्यों नहीं कहता, कि चिकित्सा विज्ञान ही नहीं है। इसी प्रकार विज्ञान की कोई ऐसी शाखा नहीं है, जहां भूल नहीं होती। आज डारविन की खोज पर प्रश्नचिन्ह लगे हैं, कल किसी और वैज्ञानिक मान्यता को भी ग़लत सिद्ध होने पर विज्ञान जगत छोड़ रहा होगा। इसका कोई यह अर्थ तो नहीं लेगा, कि वह विज्ञान ही नहीं था।

अभी मेरा प्रयास यही है, कि आप ज्योतिष की मूल अवधारणा को समझें। सृष्टि के सूक्ष्म सत्य से परिचित हों। ग्रहों की माया (Gravity) और मायारहित क्षेत्र, क्षीरसागर (Space) के रहस्यों को भली प्रकार से स्पष्ट करके जानें। सृष्टि, प्रलय एवं उत्पति के खेल में अपने को भी पहचानें। आप भी इस खेल में अपनी पात्रता को जी रहे हैं। अपनी पात्रता को सही अर्थों में पढ़ना सीखें। जिसने स्वयं को ही नहीं जाना, वह फिर जो कुछ जानता है, उसके ज्ञान के सत्य अथवा सही होने का प्रमाण, क्या हो सकता है ? वह इमानदारी से स्वयं को कैसे भरोसा दिलायेगा, कि वह जो जानता है, सही है।

जैसे जैसे, हम अपने क़रीब हुए हैं, हमने विस्मय सहित, स्वयं को भ्रम जीते ही पाया है। न तो शरीर का एक कोश बना पाये, न ही मुट्ठी भर मिट्टी से, अन्न का दाना। फिर भी, हम इसी दम्भ को आज तक जीते रहे, कि हमने ही सबकुछ बनाया है, बेटा, बेटी, भोजन, शरीर और भी बहुत बहुत कुछ। जबकि, जीवन का प्रत्येक क्षण, तन का प्रत्येक कण, प्रकृति और आत्मा, क्षीरसागर और माया के खेल से ही बनते हैं। ज्योतियों के इसी विज्ञान का एक कोना, ज्योतिष भी है। उसी महा विज्ञान का अंग है। ज्योतिष की विधिवत चर्चा से पूर्व, इस विज्ञान की निसन्देह प्रतिष्ठा, हमारे मन में होना, परमावश्यक है। जब हम, इस महा विज्ञान को सन्देह रहित होकर, पूर्ण आस्था के साथ अंगीकार कर लेंगे, तभी ज्योतिष विज्ञान को समझने की बारी आयेगी। सन्देह से भरा मस्तिष्क, सोचने और समझने की पूर्ण अवस्था, पा ही नहीं सकता।

सूर्य ग्रह की माया और सृष्टि लीला के रहस्यमय खेल को, अतीत के युगों ने, हमारे पूर्वज मनस्वियों ने, जिस प्रकार जाना, उसका संक्षिप्त परिचय भर प्राप्त किया है। आधुनिक विज्ञान के दृष्टिकोण भी, हमने जानने के प्रयास किये हैं। निर्णय भविष्य में समाया हुआ है।

क्या आप जानते हैं, पृथ्वी का वजन कितना है ? पहाड़, जंगल, नदियों, मैदानों, शहरों, नाना जीवधारियों, सड़कों और मकानों को ढोने वाली धरती का वजन, बता सकते हैं आप ? कितना हा सकता है ? नहीं बता सकते ? तो सुनिये, बस इतना ही वजन है, जितना आप अपनी छोटी अंगुली पर उठा सकें ! कृष्ण का गोवर्धन धारण, हनुमान का पर्वत उठाना, कुछ ऐसा ही है। सोचिये ?

• चन्द्रमा !

सूर्य की भांति ही, चन्द्रमा भी, हमारे जीवन, उत्पति का एक विशेष ग्रह है। इसके बिना धरती पर जीवन की कल्पना नितान्त अधूरी है। सूर्य का गुरूत्वाकर्षण, जहां पृथ्वी पर प्रत्यक्ष प्रभाव रखता है, चन्द्रमा का परोक्ष गुरूत्वाकर्षण, उतना ही अधिक, धरती के लिये मूल्यवान है।

पौराणिक कथाओं में चन्द्रमा को क्षीरसागर मन्थन के समय प्रकट किया गया था। महाशिव ने उसे अपनी जटाओं में स्थान दिया। यह कथा, एक से अधिक पुराणों में आयी है। यहां तक कि वेद के प्रथम ऋषि मधुच्छन्दा ने भी क्षीरसागर मन्थन की कथा को, उदाहरण के रूप में प्रयोग किया है। श्रीरामचन्द्र तथा श्रीकृष्णचन्द्र की कहानियों में भी इस चर्चा का उल्लेख मिलता है। लीला कथाओं में भी, इस कथा का अति महत्व है।

चन्द्रमा की २७ पत्नियां हैं तथा १६ कलायें कही गयी हैं। पत्नियों के रूप में २७ नक्षत्रों को ही दर्शाया गया है। इससे स्पष्ट है, कि गुरूकुल में, बाल कक्षाओं में ज्योतिष को, अन्य विषयों की भांति ही, लीलाओं के माध्यम से पढ़ाने का चलन रहा है। विज्ञान को सरल, सरस एवं बालक की मानसिकता के अनुरूप ग्राहय एवं सहज, रोचक बना कर, उसे जिज्ञासु एवं सुशिक्षित करने हेतु ही, इस पद्धति का व्यापक चलन रहा है। नक्षत्रों को चन्द्रमा की पत्नियों के रूप में दर्शाने की कल्पना भी यही है। अन्यथा प्रत्येक नक्षत्र समूह, चन्द्रमा से कई हजार खरब गुणा बड़ा है। फिर एक नहीं, २७ ऐसी पत्नियां। क्या हालत होगी पतिदेव की।

१६ कलाओं के नाम इस प्रकार हैं :—१. पूषा. २. यशा. ३. सुमनसा. ४. रति. ५. प्राप्ति. ६. धृति. ७. ऋद्धि. ८. सौम्या. ६. मरीचि. १०. अंशुमालिनी. ११. अंगिरा. १२. शशिनी. १३. छाया. १४. संपूर्णमण्डला. १५. तुष्टि. १६. अमृता.।

उपरोक्त कलायें, वस्तुतः, वे अनुभूतियां अथवा उपलब्धियां हैं, जो चन्द्रमा के संयोग से धरती पर जीवन को प्रकट करने, स्थायी एवं गतिमान करने के लिये परमावश्यक हैं। कालान्तर में भाष्यकारों तथा मतावलम्बी विद्वानों ने अलग अलग अर्थ खोज निकाले। बहुत से इतिहासकारों ने, राजा चन्द्रमा के माता पिता के रूप में ऋषि दम्पत्ति, किसी ने राज परिवार, साम्राज्य, स्थान तथा समय तक धरती पर खोज निकाले हैं। बहुत से विद्वानों ने, अपनी इन महान खोजों में, वेद जैसे ग्रन्थों को भी नहीं बख़्शा है।

ज्योतिर्वेद के अनुसार चन्द्रमा को क्षीरसागर से पृथ्वी कक्षा में, जल एवं जीवन के हित में लाया गया था। इसके बिना, पृथ्वी पर, वर्तमान जीवन जैसी कल्पना भी सम्भव नहीं थी। चन्द्रमा एवं पृथ्वी, अलग अलग समय में, अलग अलग कक्षा में बने हैं। जबकि मंगल और पृथ्वी, एक ही कक्षा में, प्रकृति द्वारा बनाये गये हैं। इसीलिये सभी पौराणिक ग्रन्थों में मंगल को भूमिसुत अर्थात धरती का बेटा कहा गया है। जबकि चंद्रमा को क्षीरसागर से उत्पन्न हुआ ही बताया गया है। प्रलय के देवता शिव (Lord of cosmic fires and gravities) प्रलय एवं मायाओं के अधिपति, की जटाओं में, अर्थात माया के प्रभाव क्षेत्र में, चन्द्रमा को दर्शाया गया है। चन्द्रमा, धरती की ही परिक्रमा, शिव की जटाओं, अर्थात पृथ्वी माया के क्षेत्र में रह कर ही करता है।

अतीत की कथाओं, वैदिक कालीन मान्यताओं, पौराणिक लीलाकथाओं, ज्योतिर्विज्ञान की मान्यताओं के अनुसार, चन्द्रमा को क्षीरसागर के अन्य

छोर से, पृथ्वी के समीप लाया गया था। उसे पृथ्वी का उपग्रह बनाने का मूल उद्धेश्य, पृथ्वी की माया को संतुलित करके, पृथ्वी पर, गंगावतरण करना था। जल को पृथ्वी पर सुगमता पूर्वक उतारने के लिये चन्द्रमा का होना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त भी, जीवन की धाराओं को धरती पर अवतरित करने के लिये, जीवन का संचार करने के लिये भी पृथ्वी के समीप एक उपग्रह का होना, अत्याधिक लाभकारी एवं कार्य को सुगमता पूर्वक, लक्ष्य तक पंहुचाने के लिये, परमावश्यक है।

क्षीरसागर से देवयानों द्वारा, पृथ्वी पर स्थापित करने के लिये लाये जा रहे जीवन के तन्तुओं को, माया में अभस्त करने के लिये भी एक स्पेस स्टेशन के रूप में, पृथ्वी के समीप कोई उपग्रह होना चाहिये। जहां पर कुछ समय तक जीवन तन्तुओं को मायारहित प्रभाव के उपरान्त माया में जीवित रहने के लिये अभ्यस्त किया जा सके। इसमें काफ़ी समय लग सकता है। संक्षेप में ही, हम प्रथम खण्ड में, पृथ्वी पर जीवन के अवतरण तथा जलावतरण की चर्चा कर चुके हैं।

दूसरा, प्रमुख एवं अति महत्वपूर्ण कार्य है, पृथ्वी के जीवन पर मायाओं के प्रभाव का संतुलन तथा उत्पति की क्षमताओं को बढ़ाना। चन्द्रमा ही पृथ्वी पर सूर्य से लेकर सभी ग्रहों के प्रभाव को नियन्त्रित करता है। इसे मन का स्वामी कहा गया है। पुरूषसूक्त में, ऋग्वेद के दसवें मण्डल में, चन्द्रमा को विराटपुरूष का मन बताया गया है। चन्द्रमा, परमेश्वर के मन से उत्पन्न हुआ है।

चन्द्रमा का मनुष्य के स्नायुमण्डल पर सीधा प्रभाव पड़ता है। पूर्व में जिन १६ कलाओं की चर्चा, हमने की है, उन्हें किसी भी सहज मस्तिष्क के स्वामी के शरीर में अनुभव किया जा सकता है। यथा :–

१. पूषा – पूषा का अर्थ है, ऊपर को उठना, शीघ्र नई उत्पति को प्राप्त होना, पोषण करना, इसका अर्थ शहतूत भी है। जीवन में शहतूत सी मिठास को प्राप्त होना। पूर्णिमा के दिनों में ही खेतों में बीज बोने का चलन है। अंकुर जल्दी फूटते हैं तथा पौधे तेजी से ऊपर को भागते हैं। सागर का पानी भी गगन की ओर पूर्णिमा की रातों में उफनता है। उच्च रक्तचाप के रोगी की पीढ़ा अधिक होती है। प्रेमी युगल का प्रेम भी उसी अनुपात में उफनने लगता है।

२. यशा – यशस्वी जीवन और जीवन के सम्पूर्ण यशों को प्रदान करने वाला चन्द्रमा ही है। धरती को माता का यश प्रदान कराने वाला भी चन्द्रमा ही है।

३. सुमनसा – धरा को वसुन्धरा बनाकर सुगन्ध और सौंदर्य से पुष्पित करने वाला भी चन्द्रमा ही है।

४. रति – काम चेष्ठा एवं सृष्टि के हित में रति की भावनाओं को चन्द्र कलाएं ही उद्वेलित करती हैं। कामदेव की पत्नी का नाम भी रति ही है। युँ तो कामदेव और उसकी पत्नी को, पौराणिक कथाओं में चन्द्रमा से अलग दर्शाया गया है। परन्तु चन्द्रमा की कला को रति तथा चन्द्रमा को ही कामदेव भी कहा गया है।

५. प्राप्ति – इसका अर्थ तो हम सब जानते ही हैं। चन्द्रमा की कलाओं को सम्पूर्ण उपलब्धियों का दाता कहा गया है।

६. धृति – इसका अर्थ है, धारण करने की क्षमता। धारण, ग्रहण, पकड़ना, ठहराव, स्थैर्य, तुष्टि, प्रीति। एक योग (ज्यो०)। मन की एक धारणा जिसके तीन भेद किये गये हैं :– सात्विकी, राजसी, तामसी। एक व्याभिचारी भाव (सा०)। दक्ष की एक कन्या जो धर्म की पत्नी है तथा चन्द्रमाकी एक कला।

७. ऋद्धि – वृद्धि, सफलता, समृद्धि, ऐश्वर्य। चन्द्रमा को इसका स्वामी कहा गया है। इसका अर्थ आलौकिक शक्ति, लक्ष्मी भी है।

८. सौम्या – चन्द्रमा को सोम कहा गया है। उसकी कोमल किरणों को सौम्या की संज्ञा प्रदान की गयी है। मन के कोमल भाव और सूक्ष्म अनुभूतियों के स्पर्श का दाता चन्द्रमा को कहा गया है।

९. मरीचि – प्रकाश, किरण, तृष्णा, एक ऋषि का नाम। चन्द्रमा ही जीव में तृष्णा, अभिलाषा तथा जीने की इच्छा का संचार करता है।

१०. अंशुमालिनी – अंशुल का अर्थ है, चमकीला, ज्योतिर्मय। अंशुमालिनी, ज्योतिर्मय, सम्मान की चमक से भरी अभिलाषा का प्रदाता चन्द्रमा ही है।

११. अंगिरा – तपस्या, अंग अंग को तपाकर अनन्त पाने की उन्नत अभिलाषा का प्रदाता भी चन्द्रमा को ही कहा गया है। अंगिरा एक ऋषि का नाम भी है। अंग अंग में व्याप्त अग्नि की संज्ञा के रूप में भी इस शब्द का प्रयोग, वेदों में होता है।

१२. शशिनी – चन्द्र कलंक, कामशास्त्र के अनुसार, मनुष्य के चार प्रकार के भेदों में से एक। मन में स्थित अभिलाषा, पूरक से मिलन की तड़प, आदि।

१३. छाया – संरक्षण, शीतलता, अपनत्व के भावों को चन्द्रमा ही मन में भरता है। एक अभिभावक के रूप में जीव मात्र की रक्षा चन्द्रमा ही करता है।

१४. सम्पूर्ण मण्डला – जीवन को संपूर्णता और स्थायित्व का जनक चन्द्रमा ही है।

१५. तुष्टि – तृप्ति दाता चन्द्रमा को कहा गया है।

१६. अमृता – यह सम्मान भी चन्द्रमा को ही प्रदान किया गया है। सोम, सोमरस, चन्द्रमा से प्रस्फुटित किरणों के ही नाम हैं।

एक ऐसी चमक अथवा ज्योति, जो ऊष्मा से रहित, अति शीतल एवं मनोहारी है। इसी सोम की चर्चा सम्पूर्ण वेदों में उत्पति, सृष्टि एवं स्थायित्व के हित में की गयी है। यज्ञ की रश्मियों को चन्द्रमा के सदृश्य बताकर, चन्द्रमा को ही जीवन का मूल प्रदाता कहा गया है।

चन्द्रमा को १६ कलाओं का प्रदाता कहकर, उसे ईश्वर तुल्य सम्मान प्रदान किया गया है। वेदों की भांति ही, ज्योतिष ने भी सूर्य एवं चन्द्रमा को बराबर से सम्मानित किया है। जन्म लग्न यदि सूर्य से है, तो राशि लग्न का स्वामी अनिवार्य रूप से चन्द्रमा को बनाया गया है। इस प्रकार का सम्मान अन्य किसी ग्रह को नहीं दिया गया। यह स्वयं में विचारणीय विषय है। चन्द्रमा, धरती का मात्र उपग्रह भर ही है। फिर इतना बड़ा सम्मान क्यों ?

इसका उत्तर भी हमें निकट भविष्य में मिलने वाला है। शीघ्र ही मानव के चरण, मंगल ग्रह की
धरती पर पड़ेंगे, ऐसी सम्भावना नज़र आने लगी है। वहां जाकर हमें पता चलेगा कि चन्द्रमा के होने का अर्थ, क्या है ! मंगल ग्रह पर कोई चन्द्रमा नहीं है। ओज़ोन लेयर, चन्द्रमा के बिना, कैसे सम्भव होगी ? क्षीरसागर से आ रहे जीवन को, माया में स्थापित करने से पूर्व, अभ्यस्त तथा योग्य बनाना, किस प्रकार सम्भव होगा ? चन्द्रमा के बिना उत्पति, किस प्रकार व्यवस्थित तथा निरन्तर की जा सकेगी ? वनस्पतियों की व्यापक सृष्टि के बिना, कार्बन डाई आक्साईड को आक्सीजन में बदलना, चन्द्रमा के बिना कैसे सम्भव होगा ?

ज्योतिर्वेद के अनुसार इस पृथ्वी की भी ऐसी ही अवस्था थी, जैसी आज मंगल ग्रह पर है। जीवन को स्थापित करने के लिये, सर्वप्रथम गंगावतरण की कल्पना को साकार किया गया। जल के धरा पर

अवतरण के उपरान्त, जीवन हेतु, निशेचित बीजों के द्वारा सर्वप्रथम वनस्पतियों को पूरे भूमंडल पर प्रकट किया गया, जिससे कार्बन डाई आक्साईड को आक्सीजन में बदला जा सके। साथ ही ऐसे जीवों को भी लाकर बसाया गया, जो आक्सीजन के बिना ही जीवित रह सकते हैं। वातावरण के उचित होने के उपरान्त ही, आक्सीज़न और जल पर जीवित रहने वाली प्रजातियों का अवतरण हुआ। चन्द्रमा को इसी उद्धेश्य के हित में लाया गया था। आज भी चन्द्रमा ही जल, जीवन, ओज़ोन का रक्षक होने के साथ ही प्रत्येक शरीर में उसके मन का स्वामी है।

चन्द्रमा को ही २७ नक्षत्रों का स्वामी कहा गया है। कुण्डली में, जिस किसी भी राशि में, जन्म समय में चन्द्रमा होता है, वही जातक की जन्म राशि कहलाती है। चन्द्रमा सौम्य ग्रह होने के कारण, जिस किसी नक्षत्र में विचरण कर रहा होता है, उसके प्रभाव को ही बिम्बित करने लगता है। यह कुछ ऐसा ही है, जैसे व्यक्ति, जिस किसी विचार में सोच रहा होता है, उसके मन का भाव, चेहरे की रंगत और स्वरूप, वैसे ही हो जाते हैं। चन्द्रमा का प्रभाव भी मन की भांति ही निरन्तर बदलता रहता है। ज्योतिष में इसीलिये इसे विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

मेष राशि में अश्विनी नक्षत्र में चन्द्रमा होने से गण्ड मूल का विशेष प्रभाव जातक पर होता है। चन्द्रमा के मूल के ६ नक्षत्र हैं। तीन गण्डात मूलक हैं। तीनों नक्षत्रों का स्वामी केतु माना गया है। शेष तीन को सर्पमूलक कहा गया है। इन नक्षत्रों का स्वामी बुध है। इन्हें, चरण सहित इस प्रकार जानना चाहिये।

१. अश्विनी – प्रथम चरण में पिता को अनिष्ट। द्वितीय चरण में शुभ, सुख एवं ऐश्वर्य का जनक। तीसरे चरण में, मन्त्री तुल्य सम्मान एवं पद को देने वाला। चौथे चरण में, राज्य सम्मान को देने वाला होता है।

२. मूल – प्रथम चरण में, पितृ नाशक। दूसरे चरण में, मातृ हन्ता। तीसरे चरण में, धन का नाश करने वाला। चौथे चरण में, शान्ति से शुभ।

३. मघा – प्रथम चरण में, मातृ नेष्ट। दूसरे चरण में, पितृ भय। तीसरे चरण में, सुख दाता। चौथे चरण में, धन एवं विद्या की प्राप्ती। (यह सब गण्ड मूल के ग्रह हैं। अब सर्प गण्ड मूलक ग्रह की चर्चा करेंगे।)

४. अश्लेषा – प्रथम चरण, शांति से शुभ। दूसरे चरण में, धन का नाश। तीसरे चरण में, मातृ नाश। चौथे चरण में, पितृ नाश।

५. ज्येष्ठा – प्रथम चरण में, बड़े भ्राता को भारी। दूसरे चरण में, छोटे भ्राता को नेष्ट, अपने उपरान्त के गर्भ को खंडित करने वाला। तीसरे चरण में मातृ नाश। चौथे चरण में, अपने को भारी।

६. रेवती – प्रथम चरण में, राज्य सम्मान। दूसरे चरण में, मंत्रित्व की प्राप्ती। तीसरे चरण में, धन एवं सुख की प्राप्ती। चौथे चरण में, दारूण कष्ट।

वैसे इन मूल के सभी नक्षत्रों को गण्ड मूलक जानने का ही चलन है। इन नक्षत्रों में जन्म होने पर, लगभग २७ वें दिन, उसी नक्षत्र चरण में मूल पूजा द्वारा, उपचार का विधान किया गया है।

चन्द्रमा पर नक्षत्रों का व्यापक प्रभाव होने के कारण, फलित को नक्षत्रों के प्रभाव के अनुरूप ही, अन्य ग्रहों के पड़ते प्रभाव के साथ ही, सूक्ष्म साधन करना होता है। साथ ही, यह भी नहीं भूलना चाहिये, कि चन्द्रमा के द्वारा ही जीव पर प्रभाव, यथा ग्रहों का भी पड़ता है। चन्द्रमा सारे प्रभाव का संयोजक है। इसीलिये लग्न और राशि को अधिक महत्व दिया जाता है। पाश्चात्य ज्योतिष में, जन्म के माह से

राशिफल लिखने का चलन है। भारतीय ज्योतिष में ऐसा कोई विधान नहीं है।

चन्द्रमा मेष राशि में, प्रथम नक्षत्र में होने से जातक क्रूर कर्मा, हठी, सताने वाला हो। दूसरे नक्षत्र में हो तो तेजस्वी, ज्ञानी, सरल, विवेचक, मनोहर हो। तीसरे नक्षत्र के प्रथम चरण में नृपतुल्यता लिये हुए, सुन्दर, सौभाग्यशाली, सबका हित चाहने वाला हो। वृष राशि के प्रथम नक्षत्र के दूसरे चरण में हो तो आत्म ज्ञानी, ओजस्वी, अनुसंधानकर्ता, परम सुखदाता हो। इसके अगले दो चरणों का फल भी न्यूनाधिक शुभ है। रोहिणी नक्षत्र में, वृष राशि में चन्द्रमा, जातक़ को कल्पनाशीलता को अत्याधिक बढ़ा देता है। मृगशिरा नक्षत्र में कल्पना को साकार करने की कर्मठता से युक्त स्वभाव होता है। आर्द्रा नक्षत्र उसके जीवन में भौतिक प्रधानता का भाव लाता है। सांसारिकता, छल, बल, की वृद्धि होती है। हित साधन में निपुणता आती है। पुनर्वसु नक्षत्र में, गम्भीरता, विषय की गहरायी, उदारता, निश्छल सद्व्यवहार, सेवा, दया का पुट आता है।

कुण्डली में लग्न, लग्नांश तथा चन्द्रमा यदि एक ही अंश, कला, विकला पर हो जायें तो इनका प्रभाव, गुणधर्म के अनुरूप अत्याधिक विलक्षण हो जाता है। उसके जीवन में संतुलन का अभाव सदा रहता है। इस विषय का विस्तार हम यथा समय पर करेंगे। ज्योतिष को भली प्रकार से जानने के उपरान्त ही फलित पर विचार करना उचित होगा। इसके लघु पाराशरी, मध्य पाराशरी, दीर्घ पाराशरी के साथ ही, किसी योग्य गणितज्ञ से व्यवहारिक गणित का ज्ञान होना परमावश्यक है। इसके साथ ही किस पद्धति का अनुसरण करें, इसका भी निर्धारण करना ज़रूरी है। सायण अथवा निरयन पद्धति ? केतकी चित्रापक्षीय अथवा सूर्य सिद्धान्त ? इन सब पर गम्भीर विचार करने के लिये,

पहले इन्हें गम्भीरता पूर्वक जानना होगा। उसके उपरान्त ही, किसी एक विधा के द्वारा इस विज्ञान में प्रवेश सम्भव है।

अभी हम ग्रहों के, उनकी यथा मायाओं के प्रभाव से परिचित हो रहे हैं। हमारा मूल विषय जीवन पहेली के अनसुलझे पहलुओं को खोजना है। जीवन, धरती पर कैसे और कहां से आया ? जीवन क्या है, कैसे है और क्यों है ?

• मंगल ग्रह !

पृथ्वी के साम्य जैसा ग्रह मंगल है। इसे भूमि सुत कहा गया है। पौराणिक कथा के अनुसार, मंगल की उत्पति महाशिव के स्वेद (पसीने) से हुई। पृथ्वी ने उसी स्वेद का वरण किया, जिससे मंगल ग्रह की उत्पति हुई। मंगलग्रह की अवस्था ठीक ऐसी ही है जैसी कभी पृथ्वी पर जल एवं जीवन के अवतरण से पूर्व पृथ्वी ग्रह की थी। मंगल पर जल तथा जीवन दोनो ही नहीं हैं। सम्पूर्ण ग्रह ज्वालामुखियों, तूफानो, चक्रवातों से संक्रमित है। ज़हरीली गैसों का सर्वत्र साम्राज्य है। कभी पृथ्वी की भी ऐसी ही अस्वथा थी। यदि मंगल ग्रह को जीवन के योग्य बनाना है तो हमें वही सबकुछ दुहराना पड़ेगा जो हमारे पूर्वजों ने पृथ्वी पर किया था। क्षीरसागर से जल का संचय करके मंगल ग्रह पर जलावतरण, निशेचित बीजों का सम्पूर्ण छिड़काव कर वनस्पतियों को मंगलग्रह पर उपजाना, जिससे कार्बन गैसों को आक्सीज़न गैसों में संतुलित परिवर्धन हो सके। निशेचित बीजों के छिड़काव के द्वारा मंगलग्रह पर जलीय एवं धरा पर जीवन की उत्पत्ति के उपरान्त बड़े जीवधरियों का पदार्पण, उसके उपरान्त ही मानव जीवन का स्थानान्तरण सम्भव हो सकेगा। इस सारी प्रक्रिया में लम्बा समय लग सकता है। हमें ग्रह की मायाओं को जीवन के हित में संतुलित करने के लिये मंगल ग्रह की कक्षा में भी थोड़े परिवर्तन करने पड़ सकते हैं। इसकी चर्चा हम पूर्व में कर आये हैं।

ज्योतिष में मंगल को सेनापति का पद प्रदान किया गया है। मंगल देव सेना के सेनापति हैं। इनका स्वभाव क्रूर एवं उत्तेजक प्रकृति का है। मेष तथा वृश्चिक इनकी स्वराशियां हैं। मकरराशि में यह उच्च तथा कर्क राशि में इनकी नीच अवस्था कही गयी है। इनका वर्ण रक्त

तथा मूंगा इनका राशि रत्न है। मृगशिरा, चित्रा, धनिष्ठा इनके नक्षत्र हैं। इनकी विंशोत्तरी महादशा ७ वर्ष की मानी गयी है।

सूर्य और चन्द्रमा को ज्योतिर्वेद में प्रत्यक्ष प्रभाव का ग्रह माना गया है। इससे इनके प्रभाव को तथा इनको विशिष्ठ स्थान प्राप्त है। शेष ग्रहों को परोक्ष प्रभाव का ग्रह माना गया है। यह ग्रह अपने प्रभाव से अधिक उन नक्षत्रों के प्रभाव को प्रतिपादित करते हैं, जिनके प्रभाव क्षेत्र में विचिरण कर रहे होते हैं। चन्द्रमा के पृथ्वी के समीप होने के कारण उसका प्रभाव प्रत्यक्ष माना गया है। सभी ग्रहों का प्रभाव चन्द्रमा से होकर ही पृथ्वी की माया में प्रवेश करता है। इसलिये चन्द्रमा को राशीश कहा गया है। अन्यथा सभी ग्रह किसी न किसी राशि में रहते ही हैं। उनके लिये यह व्यवस्था परोक्ष प्रभाव के कारण नहीं की गयी। चन्द्रमा सबके प्रभाव का संयोजक होने के कारण जीवन में विशिष्ठ स्थान रखता है। सूर्य सभी ग्रहों की माया का अधिपति होने के कारण अपना विशिष्ठ स्थान रखता है। शेष सभी ग्रह अपने प्रभाव को इन्हीं के द्वारा जातक के जीवन में लाते हैं।

मंगल के प्रभाव को भी यथा नक्षत्र चरण से प्रतिपादित करने का चलन ज्योतिर्वेद में रहा है। इसके प्रभाव के भी १०८ भेद किये गये हैं। पुनः ग्रहों के संयोग, प्रभाव, दृष्टी, दशा, अन्तर प्रत्यन्तर से प्रभाव बदलते हैं। इनका विस्तार यथा समय होगा।

• बुध ग्रह!

बुध ग्रह को भरद्वाज के नाम से भी जाना जाता है। भरद्वाज उसको कहते हैं जिसके दो भरतार अर्थात दो पिता हों। बुध के साथ कुछ ऐसा ही हुआ है। पौराणिक कथा के अनुसार देवगुरू बृहस्पति की पत्नी का नाम तारा था। तारा अतीव सुन्दरी थी। चंचल चन्द्रमा उसके रूप पर आसक्त हो गया। अपने मोह जाल में फंसाकर तारा को ले उड़ा। बूढ़े बृहस्पति कुछ न कर पाये। तारा से बालक बुध की समयानुसार उत्पत्ति हुई। चन्द्रमा और बृहस्पति दोनो बुध को अपना अपना पुत्र मानने लगे। दो पिता होने से बुध का नाम पड़ गया भरद्वाज।

वस्तुतः बुध एक विलक्षण ग्रह है। इसका निर्माण दो भिन्न कक्षाओं में हुआ है। इसकी धरती दो विपरीत परिस्थितियों में बनी होने से दो प्रकार की है। इसका प्रथम निर्माण पुनर्वसु नक्षत्रों के पृष्ठ क्षीरसागर क्षेत्र में हुआ। अभी यह पूर्ण निर्मित ग्रह के स्वभाव को पाया भी नहीं था कि यह भटकते धूम्रकेतु के गुरूत्वाकर्षण में फंस गया और बृहस्पति ग्रह के समीप होने लगा। यदि यह ग्रह बृहस्पति के प्रभाव क्षेत्र में फंस जाता तो इसका विलय हो जाता। पृथ्वी और चन्द्रमा के प्रभाव के कारण यह बृहस्पति के गुरूत्वाकर्षण से बचकर सूर्य की परिक्रमा करने लगा। परन्तु इसके एक भाग पर बृहस्पति ग्रह, जो ग्रह न होकर एक प्रकार से छोटा सूर्य है, उससे झुलसने से उसकी धरती का स्वरूप शेष ग्रह से सर्वथा भिन्न हो गया। अभी भी इसकी बनावट देखने में ऐसी ही है जैसे इसे जोड़कर बनाया गया हो। इसका एक भाग अति शीतल तो दूसरा अति उष्ण रहता है।

बुध ग्रह को युवराज की संज्ञा प्राप्त है। मिथुन तथा कन्या राशियों में इसका घर है। कन्या राशि ही इसकी उच्च राशि है। मीन राशि में यह नीच भाव में रहता है। सूर्य के समीप होने के कारण अधिक समय तक अस्त तथा वक्री अवस्था में रहना इसकी विवशता है। वैदिक ज्योतिष में इन बातों का विचार बुध के परिपेक्ष में कम ही होता है। बुध को ज्योतिष में बुद्धि विवेक का स्वामी कहा गया है। बुध पर १०८ नक्षत्र चरणों के अतिरिक्त सूर्य का स्थायी प्रभाव रहता है। बुध को चन्द्रमा का प्रबल शत्रु माना गया है। इसकी परिक्रमा तथा धुरि भ्रमण विलक्षण हैं। इसका रत्न पन्ना है। मानव शरीर में गुर्दों पर इसका विशेष प्रभाव माना गया है। त्वचा पर इसका प्रभाव रहता है।

देव ग्रहों तथा शनि शुक्र से इसकी मित्रता है। यह चतुर एवं निपुणता प्राप्त ग्रह है। इसके तीनो नक्षत्र सर्प मूलक हैं। अश्लेषा, ज्येष्ठा, रेवती यही इसके मुख्य नक्षत्र हैं। सर्प की चालाकी, भूमिगत रहकर सफलता प्राप्त करने की विशिष्ट निपुणता इसमें रहती है। इसलिये इसकी चन्द्रमा प्रधान व्यक्तित्व के अतिरिक्त सभी से इसकी निभ जाती है।

इसकी उपलब्धियों की कोई सीमा नहीं होती। सदा अशान्त चेष्ठारत रहना इसके स्वभाव में रहता है। सबकुछ होते हुए शान्ति एवं सुख का इसके जीवन में लगभग अभाव ही रहता है। अनुसंधान कार्य, विज्ञान, निर्माण, भारी उद्योग, होटल क्लब आदि इसके रूचिकर कार्य हैं। नक्षत्र चरण तथा अन्य ग्रहों के साम्य, बलाबल के अनुरूप यह निपुणता से ढल जाता है।

• देवगुरू बृहस्पति ग्रह !

यह पृथ्वी पर जीवन का रक्षक, नित्य यज्ञकुण्ड जैसा दहकता हुआ, अति महाकाय ग्रह अथवा एक छोटा सूर्य है। ज्योतिर्वेद के अनुसार पहले पृथ्वी पर भयंकर उल्कापात निरन्तर जीवन लीला का विनाश करते रहते थे। जितनी बार जीवन धरती पर प्रकट किया जाता कुछ ही काल के उपरान्त उसका उल्कापातों द्वारा विनाश हो जाता। ऐसा जीवन के अवतरण के उपरान्त भी बहुत बार हुआ था। भीमकाय जीवन भी यहां पर टिक नहीं पाया।

तब कुछ अहम निर्णय लिये गये। पृथ्वी की कक्षा में परिवर्तन किये गये। गुरूत्वाकर्षण नियन्त्रण प्रणाली द्वारा पृथ्वी को गुरू की कक्षा के समीप लाया गया (इसे ही कथाओं में श्रीकृष्ण के गोवर्धन पर्वत धारण तथा श्री राम कथा में श्री हनुमान के पर्वत धारण के रूप में सजाया गया है।)। अब पृथ्वी की ओर आने वाले भारी उल्कापिण्ड बृहस्पति के भारी गुरूत्वाकर्षण में फंसकर दिशा बदलकर गुरू के यज्ञकुण्ड में सामिग्री से समा जाते हैं, जहां पर उनकी महाप्रलय हो जाती है। इसप्रकार पृथ्वी का जीवन इस देवग्रह बृहस्पति की कृपा से सुखपूर्वक सुख एवं समृद्धि को प्राप्त होता है।

कल्पना करें, आप एक ऐसे मकान में रहते हैं जिसपर कोई छत नहीं है। यह घर आपका पृथ्वी ग्रह ही है। आप भूकम्पों, भू एवं जल चक्रवातों से भयभीत रहते हैं। उनसे बचने के उपाय भी करने का प्रयास करते हैं। परन्तु छत की ओर अब आपका ध्यान नहीं जाता है। क्यों ? इसलिये कि देगुरू बृहस्पति हमारे रक्षक हैं।

पौराणिक कथायें एवं साहित्य देवगुरू बृहस्पति की कथाओं से भरा पड़ा है। सबसे पहले हम ज्योतिष में देव ग्रह समझने का प्रयास करेंगे। पृथ्वी ग्रह को भी हम देवी पृथ्वी माता कहकर सम्बोधित करते हैं। देव का अर्थ ज्योतिष में वे ग्रह हैं, जो व्यवस्थित गुरूत्वाकर्षण को प्राप्त होकर, परिक्रमाओं की परिपक्वता को धारण कर नित्य जीवन तपस्या को प्राप्त कर चुके हैं। जैसे पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, मंगल, बुध, गुरू, शुक्र और शनि ग्रह। राहु और केतु ग्रह नहीं हैं। वे असुर अर्थात सुरत्व (देवत्व) से हीन माने गये हैं। इसी प्रकार आकाशगंगाओं को देव से सुशोभित किया गया है। असुर और दैत्य श्रेणी में वे महाउल्कायें, धूम्रकेतु, पुच्छल तारे आते हैं जो किसी ग्रह परिवार के जीवन को आतंकित, विस्थापित अथा महाविनाश करने में समर्थ हैं। न तो स्वयं जीयेंगे तथा न ही किसी को जीने देंगे। आत्महन्तक आतंकवादियों की भांति ही। जैसा आप आजकल फ़िदायीन हमलों में देख रहे हैं। आकाशीय आतंकवाद से हमारी रक्षा देवगुरू बृहस्पति ग्रह ही करते हैं। ज्योतिष में भी इनका महत्व उतना ही भारी भरकम है।

धनु एवं मीन इनकी स्वराशियां हैं। कर्क राशि में यह उच्च तथा मकर राशि इनकी नीच राशि मानी गयी है। वसा, पेट पर इनका प्रभाव विशेष कहा गया है। धर्मभाव तथा इनका रत्न पुखराज है।

• शुक्र ग्रह !

देवगुरू बृहस्पति के विपरीत हैं दैत्याचार्य ग्रह शुक्र। इनकी स्थिति तथा अवस्था भी कुछ ऐसी ही है। क्षीरसागर में घूमते महाउल्काओं को इनकी स्थिति अत्याधिक आकर्षित करती है। जिसके कारण सूर्य परिवार के ग्रहों पर आकाशीय आतंक बना ही रहता है। इससे आकर्षित होकर, इसकी ओर बढ़ते उल्कापिण्ड, धूम्रकेतु एवं पुच्छलतारे इसके समीप होने से पूर्व ही सूर्य की दहकती हुई रूद्रवलय में पतंगों से खिंचते चले जाते हैं। इस भट्ठी में यह सूक्ष्म ब्रह्मबिन्दुओं में परिणित होते किरणों के समूहों में नाना प्रकार की सृष्टि का सूत्रपात करने चल देते हैं। आपने शिकारी को जानवरों के पकड़ने के लिये जाल अथवा मछली पकड़ने के लिये कांटा बिछाते देखा होगा। बुध और शुक्र ग्रह सूर्य के लिये यही काम करते हैं। आतंकवादी असुर पिण्डों को आकृष्ट कर जीवनदायनी किरणों के समूहों में सचराचर को भेंट देने में इनका विशिष्ट योगदान है। कुछ ऐसा ही कार्य पृथ्वी और मंगल तथा चन्द्रमा मिलकर देवगुरू बृहस्पति ग्रह के लिये करते हैं। इनकी ओर आकृष्ट होने वाले असुर पिण्ड बृहस्पति के गुरूत्वाकर्षण में फंस कर सूक्ष्म ब्रह्म में परिणित हो जाते हैं।

शुक्रग्रह भौतिक सुखों का कारक, काम एवं गुप्तागों का कारक माना गया है। पौराणिक कथाओं में बृहस्पति को गुरू तथा शुक्र को आचार्य के पद पर सुशोभित किया गया है। गुरू जो अमर आत्मा की राह दे। आचार्य जो भौतिक जीवन की मर्यादा प्रदान कर जीवन को तथा समाज को व्यवस्थित करे। भौतिक यथार्थवाद, द्वैत धर्म ही शुक्र का मार्ग है। भरणी, पूर्वाषाढ़ा और पूर्वाफाल्गुनि इनके नक्षत्र हैं। वृष एवं तुला इनकी स्वराशियां हैं। मीन राशि में उच्च तथा कन्या राशि में यह

नीच भाव में रहते हैं। जहां बृहस्पति की महादशा १६ वर्ष तक है, इनकी महादशा का काल २० वर्ष तक रहता है। इनकी धरती तथा गुरूत्वाकर्षण विशालकाय मायावी जीवन के लिये उपयुक्त है। इनका रत्न हीरा है।

पौराणिक कथाओं में इनका संजीवनी मन्त्र पर ऐकाधिकार है। संजीवनी मन्त्र देवताओं के पास भी नहीं है। शुक्र ग्रह अपनी स्थिति तथा गुरूत्वाकर्षण के कारण विखंडित होते उल्कापिण्डों को जोड़ने में भी समर्थ है, ऐसा अतीत युगों के अनुसंधान कर्त्ता ऋषियों का मत है। इसकी क्रिया एवं पद्धति का स्पष्ट ज्ञान अब उपलब्ध नहीं है। पृथ्वी पर नूतन कोशों की उत्पति इसके गुरूत्वाकर्षण तथा प्रभाव से ही होती है। ये कोश मानव शरीर, पशु अथवा पक्षीयों के हों अथवा जीवधारियों के, शुक्र के बिना इनका निर्माण सम्भव नहीं है। वस्तुतः उत्पत्ति के रहस्यमय विज्ञान से छात्रों को सृष्टि के रहस्यों से परिचित करवाने के लिये ही लीला कथाओं का प्रादुर्भाव हुआ था, जैसे आत्मयज्ञ के द्वारा उत्पत्ति को पढ़ाने के लिये वाहय यज्ञ को प्रतीकात्मक रूप से ग्रहण किया गया था। आज सारा भक्त एवं विद्वत समाज प्रतीक को ही मूल मानकर नित नये चमत्कार किया करता है। ऐसे चमत्कार तो सम्भवतः शिक्षा में प्रतीक रूप में देने वालों को भी मालूम नहीं था। इन चमत्कारवादियों ने ही इस महाविज्ञान को सन्देहास्पद बनाकर रख दिया है। साथ ही इन्हें यह भी भ्रम है कि ये ही इस विज्ञान के उद्धारक पक्षधर हैं।

• शनिग्रह !

सूर्यपुत्र शनिग्रह इस सौर मण्डल का अति महाकाय ग्रह है। यह ग्रह भी देवग्रह होते हुए भी अपने पिता सूर्य का प्रबल शत्रु माना गया है। इसकी महादशा का काल १६ वर्ष है। पुष्य, अनुराधा तथा उत्तरा भाद्रपदा इसके नक्षत्र हैं। मनुष्य के शरीर में अस्थि प्रदेश में यह विशेष प्रभाव रखता है। जीवन तथा कर्म के स्थायित्व पर, कार्यक्षमता पर इसका विशेष विचार किया जाता है। इसे मान्दि के नाम से भी पुकारा जाता है। मकर तथा कुम्भ इसकी स्वराशियां हैं। मेष राशि में यह नीच भाव में रहता है तथा तुला राशि में यह उच्च माना जाता है। पौराणिक कथाओं में महा पीड़ादायक खलनायक की विशेष प्रसिद्धि इसे प्राप्त है। इसका रत्न नीलम है। यह ग्रह और इसका प्रभाव अति रहस्यमय हैं।

शनि ग्रह भी सूर्य आदि देव ग्रहों के लिये परेशानियां निरन्तर उत्पन्न करता रहता है। आकाश में इसकी अवस्था भी कुछ ऐसी है। महा उल्कायें इसकी ओर तीव्रता से आकर्षित होती, सूर्य परिवार में निरन्तर आतंक उत्पन्न करती हैं। सूर्य उनकी बलि लेकर उन्हें पुनः नयी उत्पत्ति हेतु सूक्ष्म बिन्दु कणों में लौटा देता है।

अभी इन सबका विस्तृत विचार गणित अथवा फलित ज्योतिष के हित में नहीं कर रहे हैं। ऐसा करना हमारा विषय भी नहीं है। अभी हम केवल अतीत के इस महाविज्ञान से परिचित भर हो रहे हैं।

इसी प्रकार राहु और केतु की चर्चा हम ज्योतिष में पढ़ते हैं। ये दोनो ग्रह नहीं हैं। मात्र परछाईयां भर हैं। वैदिक ज्योतिष में इन्हें कोई

स्थान नहीं दिया गया है। संस्कृत में राहु का अर्थ आसक्तियां, विषयान्धता तथा छल कपट के रूप में लिया जाता है। केतु को दम्भ, असत्य, अज्ञान और मिथ्याभिमान के रूप में जाना जाता है। राहु का ग्रहण चन्द्रमा (मन) पर तथा केतु का विशेष प्रभाव अर्थात ग्रहण सूर्य (आत्मभाव) पर विशेषकर होता है।

आधुनिक भौतिकवादी समाज में इन छायाग्रहों का प्रभाव अति विशिष्ट एवं व्यापक होता है। जीवनलक्ष्य से हीन, भौतिकताओं के हित में जीने वाले व्यक्ति पर इन ग्रहों का फलित सटीक बैठता है। जब व्यक्ति जीवन के प्रकृतिप्रदत्त उद्धेश्यों से विमुख होकर, दम्भ एवं आसक्ति प्रधान जीवन में ही आस्था रखता हो, इन छायाग्रहों का महत्व अत्याधिक हो उठता है। इनकी अवहेलना कदापि नहीं हो सकती।

जो व्यक्ति जितना अधिक आसक्त, क्षुद्र भौतिक उद्धेश्यों के हित में जी रहा है, उसे उपलब्धियों के साथ ही, उतनी ही पीड़ाओं को भी जीना अवश्य पड़ेगा ही। इसलिये ज्योतिष गणित अथवा फलित में इन अदृश्य ग्रहों के अदभुत प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता।

योगी का कोई भविष्य नहीं होता। उसका कारण मात्र इतना ही है कि जिसने आत्मतेज का विस्तार कर, आत्मा से योग करके प्राप्त कर लिया है, तथा जो ग्रहों के प्रभाव को आत्म तेज से निष्प्रभावी कर चुका है, उसका भविष्यफल बताया नहीं जा सकता।

• ज्योतिर्वेद में उत्पत्ति रहस्य!

ज्योतिर्वेद की मान्यता के अनुसार जीव की उत्पत्ति क्षीरसागर में ही होती है। उसका कोई रूप विशेष नहीं होता। जिस शरीर में उसका प्रवेश होता है, जीव उससे तादात्मय लेता, यथा रूप में ढल जाता है। चूंकि उसे शरीर से पूर्ण तादात्मय तथा अद्वैत करना होता है, इसलिये उसका अतीत का ज्ञान सहज ही लुप्त हो जाता है। यदि ऐसा न हो तो नये शरीर में जीव घुट जायेगा तथा शरीर भी उसका उसीप्रकार बहिष्कार कर देगा, जैसा वह कांटा लगने के समय करता है। जीव का नये शरीर में प्रवेश क्षीरसागर में ही होता है। यह क्षीरसागर आकाश न होकर, माता के गर्भ का मायारहित क्षीरसागर भी हो सकता है। यही स्थिति पेड़ पौधों तथा सम्मुन्नत जीवधारियों में है। अन्य जीवधारियें में परिस्थिति जन्य भेद हो सकते हैं, परन्तु नियम नहीं बदल सकता। नये शरीर की उल्पत्ति की प्रक्रिया में भी माया का प्रवेश नहीं होना चाहिये, इसलिये शुक्राणुओं का गर्भ में प्रवेश एवं निशेचन भी माया रहित अवस्था में ही होना चाहिये। माया का क्षणिक प्रभाव शुक्राणओं का अन्त कर सकने अथवा उसमें भारी विकृति उत्त्पन्न करने में सक्षम है। ऐसा क्यों?

एक व्यक्ति जिसका वजन धरती पर ६० किलोग्राम है। उसका वजन चन्द्रमा पर १० किलोग्राम भर ही रह जाता है। मायारहित आकाश में उसके शरीर का भार शून्य हो जाता है। स्पष्ट है कि ऐसा माया के कारण ही होता है। जीवात्मा को शरीर की आवश्यकता केवल माया के प्रभाव क्षेत्र में रक्षा कवच के रूप में अस्वाभाविक अवस्था के कारण ही होती है। मायारहित आकाश में वह स्वतन्त्र एवं स्वच्छन्द रूप में उन्मुक्त भाव में विचरण करता है। उसका कवच (शरीर) माया में

निरन्तर माया से संघर्ष करता क्षीण होता रहता है। जिसका भोजन, जल तथा वायु के द्वारा पुनर्निर्माण होता रहता है। जब भी शरीर का पुनर्निर्माण नहीं सम्भव हो पाता, शरीर का अन्त हो जाता है। जीवात्मा को दूसरे कवच (शरीर) खोज में जाना होता है। इसीलिये शुक्रणुओं अथवा निशेचन प्रक्रिया पर माया का प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये।

शरीर के निर्माण की प्रक्रिया का विस्तार दर्शन हमें ज्योतिर्वेद तथा अन्य वेदादिक ग्रन्थों में मिलती है। **अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः। देवो देवेभिरागमत्।** यज्ञकर्त्ता आत्मा ने यज्ञों के द्वारा प्रकृति को यथा चित्रों में ढालना प्रारम्भ किया। एक ही प्रकार के चित्रों से शरीर रूपी महल का निर्माण करता गया। **इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा। मन्दू समानवर्चसा।।** शुक्राणु का स्वरूप, मां के डिम्ब का चित्र, मिलन के क्षण पर सम्पूर्ण ग्रहों, नक्षत्रों तथा आकाश के प्रभाव के चित्र, सबसे जुड़कर बने चित्र को यज्ञ में ग्रहण कर, यज्ञ से नये चित्र को प्रकट किया। इस चित्र को यज्ञों के द्वारा निरन्तर बनाता चला गया। शरीर का प्रत्येक कोश इन्हीं चित्रों द्वारा निर्मित हुआ। जीवात्मा यजमान ने भी इसी चित्र का वरण करते हुए शरीर से अद्वैत किया। एक नूतन सृष्टि नवजात शरीर के रूप में प्रकट हुई, सबके मोद मंगल एवं आनन्द के हित में। इसी प्रकार की आख्यकाओं का विस्तार हम वेदों में पाते हैं।

ज्योतिर्वेद के मतानुसार शरीर की उत्पत्ति के हित में एक बहु आयामी, सम्पूर्ण, सर्वगुण सम्पन्न चित्र बनता है। जीवात्मा भी इसी चित्र में सर्वांग, सम्पूर्णता से विलय हो जाता है। चित्र की प्रतियां उसके शरीर का निर्माण करने लगती हैं। इसे इस प्रकार समझना चाहिये कि यह चित्र उस ईंट की भांति है जिससे यह शरीर रूपी महल निर्मित है। सीमेंट का काम अन्तः आकर्षण है। प्रत्येक कोश सम्मोहन आकर्षण से

जुड़ा हुआ है। सम्पूर्ण कार्य प्रणाली प्रत्येक कोश में एकाकार परिलक्षित होती है। जीवात्मा तथा प्रत्येक कोश तद्रूपता को प्राप्त होने के कारण, एक ही प्रकार से सोचते समझते, एक ही प्रकार से एक सा ही निर्णय लेते, गतिशील एवं कर्मशील होते हैं। प्रत्येक कार्य बिना किसी व्यवधान के स्वैच्छिक भाव से, सोते जागते, चलते फिरते, संघर्ष पीड़ा में यथा एक ही रहते हैं।

जीवात्मा एवं कोश एक रूपता के कारण अंतिम रूप से प्रणयबद्ध रहते हैं। यही कारण है कि जीवात्मा अपने शरीर को आत्मसात किये रहता है। विपरीत एवं अति विकट परिस्थितियों में भी शरीर अथवा उसके किसी अंग से अलग नहीं होना चाहता। अन्यथा जीवात्मा एक ऐसे महल में रहता है जिसके खरबों खुले हुए द्वार हैं। वह जब चाहे इस घर से बाहर निकल सकता है। एकात्मता एवं सम्मोहन आकर्षण ही बन्धन का मूल कारण है। इसीलिये अतीत के युगों की गुरूकुल शिक्षाप्रणाली भौतिकतापरक न होकर जीवनज़यी अधिक थी।

खरबों द्वार हों जिस शरीर में उसमें शत्रु रोगाणुओं तथा अन्य घुसपैठियों से रक्षा, भला कैसे सम्भव होगी ? उसका उत्तर भी कोशों की एकात्मता ही है। जिसप्रकार यह कोश जीवात्मा सहित समरसता, समरूपता के कारण एक दूसरे से जुड़े हैं, उतनी ही प्रतिद्वंदता और घृणा से यह दूसरे घुसपैठियों से शत्रुता भी करते हैं। इसका मूल कारण यही है कि उनके पास उनके स्वरूप के सदृश्य चित्र अथवा गेट पास नहीं है। जन्म के समय का चित्र उत्पत्ति के क्षण की सटीक कुण्डली है। इसी चित्रकुण्डली को ही प्रत्येक कोश निरन्तर धारण करेगा। कोश तो जीवन पर्यन्त बनते ही रहेंगे, चित्र कभी नहीं बदलेगा। प्रत्येक कोश जन्म कुण्डली को स्वयं में सहेजे रहेगा। जीवात्मा का स्वरूप भी अक्षरशः यही रहेगा।

आधुनिक शिक्षा विज्ञान में भी हमें इसके प्रमाण कुछ हटकर मिलते हैं। शरीर किसी भी वाहय वस्तु, पदार्थ अथवा अंग को सहज ही ग्रहण नहीं करता। भोजन को भी यज्ञ के उपरान्त, सूक्ष्म परिवर्तन के उपरान्त ही ग्रहण किया जाता है। जब भी किसी रोगी के शरीर में अंग परिवर्तन करना होता है, तो उसके शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को पंगु बनाना अनिवार्य हो जाता है। ऐसा शरीर रोगाणुओं से लड़ने की सहज क्षमता को भी खो देता है। नाना रोगों की चारागाह बनने का खतरा सदा बना रहता है।

इस चित्र का निर्माण ब्रह्मरन्ध्र में होता है। जीव का प्रवेश तथा मूल स्थान बह्मरन्ध्र ही है। जब कोई व्यक्ति जीवन को पूर्ण कर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, उसके स्वजन उसे श्मशान गृह ले जाते हैं। उसका पुत्र उसे चिता पर अग्नि देने के उपरान्त एक तगड़े बांस से शिराघात करता, उसकी कपालक्रिया करता, वस्तुतः ब्रह्मरन्ध्र का ही भेदन करता है। ऐसा करके वह जीवात्मा को देह से स्वतन्त्र करता है। शरीर वनस्पतियों की देन है। प्रकृति, पेड़ पौधों के अंश से निर्मित है। वे ही इसके पितृ हैं। इसीलिये चिता को पितृयान कहा गया है। परन्तु जीवात्मा तो ब्रह्मा की सन्तान है। उसे पितृयान से गमन कराना अपराध है। जीवात्मा को कपालक्रिया द्वारा ब्रह्मरन्ध्र से छुड़ाकर स्वतन्त्र करना परम अनिवार्य है। ऐसा न होने पर सभी लोग पाप के अधिकारी होंगे। आधुनिक युग में भी महान भारत जाति संस्कृति के लोग इसका धर्मपूर्वक पालन करते हैं। समय के अन्तरालों में ईरान–अफग़ान सीमा पर बने हिन्दुकुश पर्वत से उजड़कर भारत में आ बसी तथाकथित हिन्दु नामधारी जातियों में तथा आर्यान (ईरान) से भागकर भारत में आ बसी भगोड़ी तथाकथित आर्य नामधारी संस्कृतियों में इन संस्कारों का ज्ञान अभाव सम्भव है। अन्यथा भरत–खण्ड की भारत जाति एवं संस्कृति में इन संस्कारों का चलन सर्वत्र देखने में आता है।

• ब्रह्मरन्ध्र! जीवात्मा का रंगमहल!

प्रत्येक जीवधारी के मस्तिष्क में, मस्तिष्क के क्षीर–तरल में एक ग्रन्थि निरन्तर नागाकार शिरामण्डल में तैरती रहती है। इसका आकार प्रकार तथा दृश्यावली कुछ इस प्रकार है जैसे शेषनाग पर, क्षीरसागर में तैर रही शालिग्राम की बटिया। इसी को ब्रह्मरन्ध्र कहा गया है। यह निरन्तर मस्तिष्क के तरल सागर में तैरता रहता है। प्रकृति ने इसे अति गोपनीय ढंग से, सिर की कपाल सुरक्षा के भीतर सहेज कर रखा हुआ है। इसपर किसी प्रकार से भी आघांत न हो सके, इसी सुरक्षा के हित में इसे द्रव्य प्रदेश में गतिमान अवस्था में रखा गया है। आघात की अवस्था में यह सहज ही स्थान परिवर्तन कर सकता है। मृत्यु के उपरान्त यह तरल प्रदेश जमने लगता है, गाढ़े दही के सदृश्य हो जाता है, तब ब्रह्मरन्ध्र उसमें फंसकर रह जाता है। कपालक्रिया द्वारा उसे फाड़कर जीवात्मा को मुक्त करना सम्भव हो सकता है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में ऐसी कोई अवधारणा नहीं है। फिर भी एक ऐसी ग्रन्थि का सटीक चित्रण हमें मानव मस्तिष्क में मिलता है। इसका आधुनिक नाम 'पीनियल–बाडी' है। इसे महत्वहीन ग्रन्थि के रूप में मेडिकल शिक्षा में पढ़ाया जाता है। इसे एपेन्डिक्स ग्रन्थि के समकक्ष रखा गया है। छात्र की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह इस विषय को पढ़े अथवा नहीं। अभी तक ऐसा ही है। हाल ही में पिछले कुछ दशकों में इस ग्रन्थि को लेकर वैज्ञानिकों में कुछ उत्कन्ठा जागृत हुई है। लगभग १४ अनुसन्धानशालाओं ने इसपर व्यापक शोध आरम्भ कर दिये हैं। इसके फल भी प्राप्त होने लगे हैं। सबने इसे अत्याधिक रहस्यमय, अतिमूल्यवान तथा भविष्य में चिकित्सा विज्ञान को नया मोड़ देने वाला, सम्पूर्ण चिकित्सा पद्धति को बदल देने वाला शोध अभी से

मान लिया है। नई खोजों ने इतना तो सिद्ध कर ही दिया है कि यह ग्रन्थि अनिवार्य रूप से लगभग सभी जीवधारियों में विद्यमान है। प्राचीन विदेशी चिकित्सा विज्ञान में सम्भवतः इसे ही तीसरी आंख की उपाधि प्रदान की गयी थी। ऐसा जिप्सी कबीलों में ही था।

ज्योतिर्वेद ने इसे सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है तथा नाम भी दिया है – ब्रह्मरन्ध्र। आत्मग्रन्थि। जीव का ईश्वर तथा अनन्त सत्ता से मिलन कराने वाला द्वार। महाशिव का तीसरा नेत्र ! महाप्रलय का द्वार ! (इसकी चर्चा 'सनातन दर्शन के नौ अध्याय', तथा 'साधना विज्ञान', पुस्तक में भी देखें)।

शरीर की संरचना का आरम्भ सर्वप्रथम ब्रह्मरन्ध्र की सूक्ष्म स्थापना द्वारा ही होता है। चित्र का प्रथम निर्माण ब्रह्मरन्ध्र ही करता है। उत्पत्ति के क्षण का मूल चित्र इसी ब्रह्मरन्ध्र में स्थायी रूप से रहता है। इसकी प्रतिकृतियां हर ओर चित्रित कोशों का निर्माण करने लगती हैं। जीवात्मा का आवाहन भी ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा होता है। जीवात्मा ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश पाता, स्वयं को अर्पित कर गहन निद्रा में चला जाता है। ब्रह्मरन्ध्र उसे चित्र के अनुरूप नया रूप प्रदान करता, उसकी पूर्व प्रकृति को यथा सम्भव मिटा देता है, जिससे नये घर को जीवात्मा सहज ही आत्मसात कर सके। सम्पूर्ण शरीर के कोशों तथा कोशों द्वारा निर्मित अंगों में जीवात्मा सहित, एकरूपता, एकरसता तथा एकात्मभाव अखण्ड रहे।

क्या आप जानते हैं कि जब आप किसी पर रीझते अथवा प्रेम करते हैं तो ऐसा करने वाले आप अकेले नहीं होते ? आपके शरीर में प्रत्येक कोश में व्याप्त सभी चित्र तद्रूप प्यार करने लगते हैं। ऐसा ही क्रोध, घृणा, प्रतिशोध, छल और कपट में भी होता है। सुख दुख, पीड़ा, व्यथा का प्रभाव प्रत्येक कोश पर एक जैसा ही होता है। क्रोध में आपके चेहरे के साथ ही सारे शरीर की मांसपेशियां ऐंठने लगती हैं। क्या

ऐसा आपने चाहा अथवा सोचा भी था ? यह प्रभाव प्रत्येक कोश में स्थित चित्र एवं एकात्म सम्मोहन के द्वारा ही होता है। जिसका नियन्त्रण मस्तिष्क के भाग के द्वारा होता है, जिसपर जीवात्मा अथवा व्यक्ति का कोई नियन्त्रण प्रत्यक्षतः नहीं होता है। इसका नियन्त्रक ब्रह्मरन्ध्र ही है। ब्रह्मरन्ध्र का नियन्त्रक ब्रह्म ही हो सकता है अथवा जिसने ब्रह्मावस्थां को योग द्वारा प्राप्त कर लिया हो।

ज्योतिर्वेद के अनुसार पशुपताग्नियां, वे अन्तर्ब्रह्माडीय ज्योति किरणे हैं जिन्हें किसी भी पात्र में संचित कर पाना सम्भव नहीं है। यह किसी भी धातु अथवा पदार्थ के आर–पार सहज ही ब्रह्म बिन्दुओं (एटम) के मध्य में व्याप्त शून्य क्षेत्र से निकल जाती हैं। ऐसा अन्य किरणों के साथ भी है। ब्रह्मरन्ध्र ही ऐसा पात्र है, जिसमें लगभग सभी प्रकार की सूक्ष्म किरणें संचित हो जाती हैं। इन्हें ब्रह्मरन्ध्र विद्युत तरंगों में आज्ञाचक्र से सम्पूर्ण शरीर में प्रवाहित करता है। इन्हीं विद्युत तरंगों के द्वारा भोजन ऊर्जा, जल तथा कार्बन गैसों में परिणत होता रहता है, जिससे शरीर का तापमान तथा शक्ति बनी रहती है। यदि योगी ब्रह्मरन्ध्र का नियन्त्रण प्राप्त कर ले तो वह इन्हीं विद्युत झम्मोकों की गति सहस्त्र गुणा बढ़ाकर सम्पूर्ण कोशों को ज्योति में परिणत करता देह से गमन कर सकता है। ब्रह्मरन्ध्र पर नियन्त्रण प्राप्त होते ही कोश तथा सूक्ष्म चित्र पर भी नियन्त्रण प्राप्त हो जाता है। योग, तप, साधना, समाधि का यही परम लक्ष्य है।

जब आप किसी वस्तु को देखते हैं, वह चित्र प्रकाश के संयोग से नेत्रों के द्वारा मस्तिष्क पर बिम्बित होता है। आपका मस्तिष्क उस चित्र की यथा व्याख्या करता है। क्या आप जानते हैं कि एक ही चित्र नाना प्राणियों द्वारा अलग–अलग प्रकार के बिम्ब बना सकता है ? रंग, रूप, आकार, प्रकार, व्याख्या सबकुछ बदल सकती है। यह सिर्फ खुली आंखों की चर्चा है। कल्पना कीजिये जब आप सो रहे थे। आंखों के

द्वार पूरी तरह बन्द हो चुके थे। आपने स्वप्न देखा। कैसे ? प्रकाश कहां से आया ? चित्र बना कहां पर ? नींद में दिखा कहां पर ? सब खेल ब्रह्मरन्ध्र का है। सम्पूर्ण तन्त्र विद्याओं का मूल ब्रह्मरन्ध्र रहस्य ही है।

ब्रह्मरन्ध्र का विकास मनुष्येत्तर भूत प्राणियों में अधिक पाया गया है। उसका कारण क्या है ? मनुष्य के मस्तिष्क में बुद्धि का विकास अत्यधिक विकसित है। मनुष्य व्यवहारिक जगत में बुद्धि को ही प्रधानता देता है। भाषा में सभी क्रिया कलापों, लोक व्यवहार तथा सम्पूर्ण जीवन को बुद्धिगम्य आस्था सहित जीता है। जबकि पशुओं में इस प्रकार का क्रमिक विकास होने की सम्भावना नहीं है। उनका बुद्धिगम्य आचरण और व्यवहार, मनुष्य की नकल, अनुसरण अथवा परिस्थितिजन्य हो सकता है। परन्तु उनके जीवन का सारा व्यवहार ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा ही सम्पादित होता है। उनके नित्य जीवन का आधार ब्रह्मरन्ध्र ही है। मैंने हिमालय प्रवास के दौरान तथा यहां वन प्रदेश में स्थित इस आश्रम में उनके साथ रहते हुए स्पष्ट अनुभव किया है।

इनकी भाषा अत्यधिक सुस्पष्ट तथा सन्देहरहित है। मुख से आवाज करके यह दूसरे जीव को आकर्षित भर करते हैं। फिर यह अपने ब्रह्मरन्ध्र के संयोग से जो कहना चाहते हैं उसे त्रिआयामी काल्पनिक चित्र में उभारकर नेत्रों के संयोग से दूसरे जीव को संप्रेषित करते हैं। वह भी इसी प्रकार उत्तर देता है। उन्हें किसी स्कूल अथवा पाठशाला में पढ़ने के लिये नहीं जाना होता। फिर भी उनकी भाषा अति समृद्ध है। हर्ष, विषाद, प्रेम, द्वेष बांट भी लेते हैं और जी भी लेते हैं। इनके बीच रहकर मैंने इनसे वह सबकुछ पाया है जो अन्यथा सम्भव नहीं था।

एक बार मेरे मित्र कोयल पक्षी ने मुझसे कहा, "ऊपर से उड़ते हुए नीचे देखें तो बड़ा सुखद लगता हैं।" मैंने उसे बताया कि मैं ऐसा नहीं कर सकता। मेरे पास उड़ने वाले पंख नहीं है। दूसरे ही क्षण उसने अपने ब्रह्मरन्ध्र से मेरे व्रह्मरन्ध्र को बांध लिया और एक घन्टे तक मैं पूर्ण चैतन्य अवस्था में ऊपर से उड़ते हुए नीचे के दृश्य देखता रहा था। इन भोले देवताओं (जिन्हें आप जंगली पशु पक्षी कहते हैं) के लम्बे सामीप्य एवं सानिध्य से मैंने बहुत बहुत कुछ पाया है। जो अन्यथा सम्भव नहीं था। असंख्यों घटनायें और विचित्र कहानियां हैं। वेद का ज्ञान इनके जीवन में अनजाने ही प्रवाहित है। जो एक योगी के लिये दुर्लभ अवस्था है, इनके लिये सहज बोधगम्य है।

वस्तुतः योग इसी अवस्था को ही कहा गया है। जीवात्मा वाहय जगत से विरक्त, अनासक्त, मुक्त होकर स्वयं को ब्रह्मरन्ध्र में सहज स्थापित होकर, सर्वप्रथम स्वयं से परिचित होता है। श्रीकृष्ण की लीलाकथा में ब्रह्मरन्ध्र को ही परोक्ष रूप से द्वारिका कहा गया है। यहीं से जीव का देह में प्रवेश होता है। यहीं से निरन्तर ग्रहों नक्षत्रों का प्रभाव भी शरीर में प्रवेश पाता है। यहीं से जीव को अनन्त की यात्रा पर जाना होता है। जब वह ऐसा नहीं कर पाता तो चिता की लकड़ियों पर कपाल क्रिया द्वारा उसे छुड़ाया जाता है। यही देवयान और पितृयान का केन्द्र बिन्दु है। आश्चर्य है कि पशु पक्षी लगभग सभी जीवधारी ब्रह्मरन्ध्र के सहारे, ब्रह्मरन्ध्र में ही जीते हैं। मनुष्य ही इस महा विज्ञान से समय के साथ दूर हटता चला गया। अब इतना दूर जा चुका है कि उसे अपनी पहचान का अता पता भी नहीं रहा है। असत्य, आसक्ति, अतृप्ति, लिप्सा, वाहय आडम्बर, दिखावा, संचय की उन्माद स्तर तक पहुंच चुकी मनोवृति, अहंकार, दम्भ और मिथ्याभिमान ही उसका नया परिचय बनकर रह गये हैं। कुदरत का अकेला भटक गया प्राणी ! क्या कभी लौट पायेगा अपनी सहज अवस्था में।

• ज्योतिष के प्रति !

हमारा विषय सम्पूर्ण ज्योतिर्वेद के विभिन्न सोपानों का परिचय भर ही रहा है। तीनो खण्ड भूमिका भर हैं। प्रत्येक दिशा में एक गम्भीर शोध, क्रमिक अनुसंधान के द्वारा ही अतीत के अतिबहुमूल्य विज्ञान को उजागर करना सम्भव हो सकेगा। ज्योतिष के क्षेत्र में अभी बहुत कुछ अतीत तथा आज के संदर्भ में होना है। इसको वैज्ञानिक आधार अभी पूर्ण रूपेण प्राप्त नहीं है। ग्रन्थों में भी भारी विरोधाभास हैं। प्रत्येक भाव अथवा योग के समर्थन तथा विपरीत में भी श्लोकों का अम्बार लगा हुआ है।

इस कम्प्युटर युग में इसकी उपयोगिता का भी भरपूर लाभ ज्योतिष शोध में लिया जा सकता है। ऐसे साफ्टवेयर भी अनुभव तथा ज्ञान के अनुरूप बनाये जा सकते हैं। वैदिक ज्योतिष काल में ज्योतिष एक विधिवत विज्ञान के रूप में पढ़ाया जाता था। ग्रहों से अधिक नक्षत्रों को महत्व दिया जाता था। जन्म लग्न को नक्षत्र चरण के अनुरूप १०८ स्थूल गणित के रूप में ग्रहण किया जाता था। इनके १०८ भावफल स्थूल रूप से छात्रों को हृदयगंम करने पड़ते थे। इसी प्रकार शेष सभी ग्रहों के नक्षत्र चरण के अनुरूप १०८ भावफल स्थूल रूप से छात्र कंठस्थ करते थे। किसी भी जातक के स्थूल रूप से जीवन की व्याख्या इनके माध्यम से की जाती थी। अब भी नवग्रह तथा दसवां लग्न के १० X १०८ भावफल के स्थूल साफ्टवेयर बनाये जा सकते हैं। इन्हें विंशोत्तरी महादशाओं के साथ संयोग कर उपयोग किया जा सकता है। आरम्भिक कक्षाओं के लिये वैदिक युगों की भांति ही पाठ्यक्रम बनाये जा सकते हैं।

यहां एक बात और भी कहना चाहूंगा, आधुनिक ज्योतिष को अधिक वैज्ञानिक सटीक एवं सन्देहरहित बनाने के हित में। चन्द्रमा के अतिरिक्त शेष सभी ग्रह सूर्य को ही केन्द्र मानकर परिक्रमा करते हैं। जबकि ज्योतिष को पृथ्वी पर रह रहे जातक के हित में ग्रहों के प्रभाव का चिन्तन करना होता है। ऐसे कम्प्युटर साफ्टवेयर बनाये जा सकते हैं जिसके द्वारा प्रतिक्षण पृथ्वी पर सभी स्थानों में पड़ रहे ग्रहों के एकांगी एवं सामूहिक प्रभावों को ग्रहों की दूरियों सहित पता लगाया जा सके। ऐसा करना भविष्य के वैज्ञानिक शोध एवं अनुसंधान के हित में मील का पत्थर होगा। ज्योतिष शिक्षा के हित में भी यह एक अमृत तुल्य प्रयास होगा।

आजकल अन्ध आस्था एवं अन्ध विश्वास के मनोवैज्ञानिक अपराधिक दोहन का प्रचार प्रसार तथा व्यहार सर्वत्र हो रहा है। ऐसे व्यवसायिक ठगों द्वारा नित नये तथाकथित विज्ञान गढ़े जा रहे हैं तथा उन्हें ज्योतिष के समकक्ष दिखाने के अपराधिक षडयन्त्र भी हो रहे हैं। ऐसे अपराधिक षडयन्त्र मात्र धन बटोरने की लिप्सा से हो रहे हैं, इनका विज्ञान, शोध से दूर तक कोई सम्बन्ध नहीं है। ज्योतिष का गणित ग्रहों के प्रभाव को स्पष्ट करने के लिये है। फलित गणित से नहीं; ग्रहों के यथा प्रभाव से लिया जाता है। जबकि न्युमरोलाजी, लाल किताब के पीछे न तो जीवनदायक ग्रहों के प्रभाव का विज्ञान है तथा न ही कोई वैज्ञानिक आधार ही है। मात्र विश्वास, आस्था का भ्रमात्मक दोहन भर है। इनके कारण ही यह महाविज्ञान कलंकित होता है।

अतीत के इस महाविज्ञान ने मानव को समय की पहचान दी है। इसे लुप्त होने से बचाया जाना चाहिये। आज भी विश्व समय के लिये ज्योतिर्वेद की काल निरूपण प्रणाली पर ही निर्भर है। मनुष्य तथा सचराचर की उत्पत्ति के रहस्य इसमें ही छिपे हैं। इसे वेद चक्षु की संज्ञा प्रदान की गयी है। यह महाविज्ञान है।

विज्ञान को चमत्कारों के सहारे की आवश्यकता नहीं होती। यह बात और है कि विज्ञान में चमत्कार हुआ करते हैं। ज्योतिष को चमत्कारिक बनाने, चमत्कारिक भविष्यवाणियों का ढोल पीटने वाले, यह क्यों भूल जाते हैं कि इसके भारी दुष्परिणाम ज्योतिष विज्ञान को लम्बे समय तक घुटकर पीने पड़ते हैं। कलंक का बोझ सम्पूर्ण ज्योतिर्वेद के गले पड़ता है, जिसका ज्योतिष एक घटक मात्र है।

मिशन और प्रोफेशन के बीच मानवता और मानवीय मूल्यों का कितना पतन हुआ है, इसे हम सब सूक्ष्म चिन्तन द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं। जब हम सन्त की राह पर थे, जीवन अतिशय सरल, सुखद और लक्ष्यपरक था। अब जिन्दगी महज़ एक धन्धा बनकर रह गयी है। हम कितने सुखी हैं ? कहते हैं धन्धा, आदमी को अन्धा कर देता है, फिर वह अपने मतलब को ही अकेला सच मानता है। ऐसे में ज्योतिष कैसे कर पावेगा ? हमें मिथ्याभिमान, अहंकार और क्षुद्रता से ऊपर उठकर सोचना होगा। ज्योतिष का महावाद है – इष्ट बिना सब भ्रष्ट है। यह एक ध्रुव सत्य है। यह विज्ञान आत्मा के विषय से सम्बन्धित है। इसे पवित्र भाव से सन्त भावना के साथ ही ग्रहण करने की परिपाटी है। हमें अपने जीवन को इस राह में उठाना होता है। यह देवज्ञान है। इसकी भावना का अनादर करके इसे नहीं पाया जा सकता।

• बिदाई से पूर्व !

'ज्योतिर्वेद के विभिन्न सोपान' श्रृखंला को यहीं पर समापन दे रहा हूं। इस विश्वास के साथ कि हम सब इसके नाना सोपानों पर गम्भीर शोध एवं अनुसंधान में निरन्तर प्रयत्नशील रहेंगे। आशा करता हूं कि इन ग्रन्थों में समाज को कुछ दे पाया हूं। इस कार्य में बहुत से भक्त मित्रों का अमूल्य सहयोग मुझे मिला है। यह ग्रन्थ उनके ही सद्प्रयास हैं। हिमालय की गोद से कब लखनऊ आ पहुंचा, दशक दर दशक समय अन्तरालों को लांघता चला गया, कुछ पता ही न चला। जब होती है सांझ गहरी, पेड़ों की परछांईयां बहुत दूर तक फैल कर पेड़ को ही विस्मित कर देती हैं। बस ठगा सा रह जाता है।

अतीत की चादर के नीचे लम्बे अन्तराल हैं सोये हुए। बहुत प्रयास करता रहा कि आधुनिक शिक्षा "अच्छी नौकरी, ऊंची तनख्वाह और मोटी ऊपर की आमदनी (घूंस?)" के लक्ष्य से हटकर, छात्र को उसके सम्पूर्ण जीवन को तथा सचराचर को लक्ष्य मानकर बनायी जायें। शिक्षा एकबार फिर अपने मूलस्वरूप को पाये। गुरूकुल की राह लें। इस देश के कर्णधारों, शिक्षामन्त्रियों और प्रधानमन्त्रियों से भी मिला हूं। कुछ भी नहीं कर पाया हूं। अब कुछ करने की मनःस्थिति भी नहीं है। सांझ की परछांईयां दूर दूर तक फैल गयी हैं। बस कामना ही कर सकता हूं। यह कुछ उपन्यास नये दयामयी राजेश्वरी शंकर और सन्तहृदय दयाशंकर की अमृत भावना का स्वरूप ही हैं। उन्हीं की इच्छा का रूप हैं। पता नहीं इनमें जनमानस को कुछ दे पाया हूं अथवा नहीं।

इसमें मैं अपने सन्त भक्त मित्र, कई दशक के साथी, मौन संगी, श्री रघुनाथ सरन को आत्मा से याद करना चाहूंगा। शिक्षा से रिटायर होने के साथ ही डालीगंज का स्थान बेंचकर आश्रम के समीप जंगल में आ बसे। इन ग्रन्थों तथा अंग्रेजी के उपन्यासों में उनका निष्काम समर्पित सहयोग और अर्पित भाव वन्दनीय हैं।

उसकी उपलब्धियां भी क्या होंगी जो धरती पर रहते हुए भी आकाश ही जिया हो। उसका परिचय भी कैसे दिया जाये ? व्यक्ति को उसकी उपलब्धियां ही परिचय प्रदान करती हैं। कई दशक पूर्व सबके हठ के कारण लखनऊ ठहर गया था। सबने चाहा कि एक आश्रम बने। शहर में ठहरने का मन नहीं था। कुकरैल रिज़र्व फारेस्ट के किनारे, शहर से दूर, एक आश्रम समय के साथ प्रकट हो गया। फिर सबने कहा कि चेले चन्दे के विधान किये जायें, अन्यथा आश्रम के खर्चे कैसे पूरे होंगे। उनकी बाते आज भी नहीं समझ पाया हूं। चेला, न चन्दा, बस गोविन्दा ! जब मेरा आराध्य घटघट वासी है, उसकी इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता ! तब फिर वह ही जाने! उससे हटकर कोई इच्छा नहीं होगी ! जैसे रखेगा रहेंगे ! प्राणीमात्र की चरण रज ही माथे का तिलक होगा। बस यूंही कई दशक यहां भी सरक गये हैं। आरम्भ में लोगों को अजीब से ही लगे। निष्काम सेवा की आड़ में कुछ तो होगा ही। समय फिसलता रहा, उन्हें भी अहसास होने लगा कि ऐसे भी जिया जा सकता है। अब बहुत से मित्र हैं वे भी जीने की राह पा गये हैं। भीतर की राह पाने के लिये बाहर स्थितिप्रज्ञ होना हमारी अनिवार्यता है। वे भी समझ गये हैं। दो राहों पर जाने वाले कुछ नहीं पाते। दुविधा में दोउ गये। माया मिली न राम।

अब तो पंखों में हवा भरने की बारी है। प्रत्येक रविवार वेदगंगा प्रवचन तक ही सीमित होना चाहेंगे। भक्त समाज की सेवा के लिये प्रवचन कैसेट यथावत चलते रहेंगे। वेद के अमृत रहस्य तो सन्यासी की

सांसों धड़कनों की भांति होते हैं। उन्हीं में रहना, जीना और गमन कर जाना ही सन्यासी का सबकुछ होता है। उन्हीं में धड़कते रहेंगे। इसी के साथ आपसे प्रणाम सहित विदा लेते हैं।

गोविन्द हरि ! नारायण हरि !!